॥ ओ३म् ॥

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यस्तृतीयो भागः

नामिकः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां द्वितीयो भागः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम्

॥ ओ३म् ॥

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यस्तृतीयो भागः

नामिकः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां द्वितीयो भागः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम्

प्रकाशक

वैदिक पुस्तकालय

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर

प्रकाशक : **वैदिक पुस्तकालय**
दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर
संस्करण : द्वादश
वि० सं० २०६५
मूल्य : ३०.०० रुपये
मुद्रक : **अजय प्रेस**
शाहदरा, दिल्ली

ओ३म्

नामिकविषयसूचिपत्रम्

विषय		पृष्ठ
उपोद्घातः—		१-५
[अथाजन्तप्रकरणम्—		६-५८]
अकारान्तविषयः	—	६-२१
आकारान्तविषयः	—	२१-२६
इकारान्तविषयः	—	२६-३६
ईकारान्तविषयः	—	३६-४२
उकारान्तविषयः	—	४३-४६
ऊकारान्तविषयः	—	४६-४९
ऋकारान्तविषयः	—	४९-५६
ऐकारान्तविषयः	—	५६-५७
ओकारान्तविषयः	—	५७-५८
औकारान्तविषयः	—	५८
[अथ हलन्तप्रकरणम्—		५९-१०१]
चकारान्तविषयः	—	५९-६२
छकारान्तविषयः	—	६३-६४
जकारान्तविषयः	—	६४-६७
टकारान्तविषयः	—	६८
तकारान्तविषयः	—	६८-७०

विषय		पृष्ठ
दकारान्तविषयः	—	७०
नकारान्तविषयः	—	७१–८३
पकारान्तविषयः	—	८३–८४
भकारान्तविषयः	—	८४–८५
रेफान्तविषयः	—	८५–८८
वकारान्तविषयः	—	८८–८९
शकारान्तविषयः	—	८९–९०
सकारान्तविषयः	—	९०–९७
षकारान्तविषयः	—	९७–९८
हकारान्तविषयः	—	९८–१०१
[अथ पादादिशब्दप्रकरणम्—		१०२–१०५]
[अथ सर्वनामप्रकरणम्—		१०६–१३८]
[अथ वैदिकशब्दनियमविषयः—		१३९–१५०]
[अथ लिङ्गानुशासन (प्रत्यय) विषयः		१५१–१५५]

॥ ओ३म् ॥

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यस्तृतीयो भागः

नामिकः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां द्वितीयो भागः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम्

प्रकाशक

वैदिक पुस्तकालय

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर

* ओ३म् *

अथ नामिकः

यह पढ़ने पढ़ाने की व्यवस्था में पांचवां पुस्तक है। प्रथम 'सन्धिविषय' को पढ़कर पश्चात् इसको पढ़ना चाहिये। **'नामिक'** इसलिये इसको कहते हैं कि इसमें सुप् के साथ नाम अर्थात् सञ्ज्ञा आदि शब्दों का विधान है, और इसी हेतु से **'नाम्नां व्याख्यानो ग्रन्थो नामिकः'** यह तद्धितार्थ सङ्गत होता है, क्योंकि यहां 'नाम' शब्द से व्याख्यान अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय हुआ है। नामवाचकों को प्रयोगसिद्धि के लिये मुनिवर पाणिनिजी ने प्रातिपदिक सञ्ज्ञा से विधान किया है।

(प्रश्न)—'प्रातिपदिकसञ्ज्ञा' का क्या फल है ?

(उत्तर)—सुप्, स्त्री और तद्धित प्रत्ययों का विधान होना।

(प्रश्न)—'सुप्' किसका नाम है ?

(उत्तर)—प्रथमा के एकवचन से लेके सप्तमी के बहुवचन पर्य्यन्त इक्कीस (२१) प्रत्ययों के सङ्घात का।

(प्रश्न)—'सुप्' के कितने अर्थ हैं ?

(उत्तर) सुपां कर्म्मादयोऽप्यर्थाः सङ्ख्या चैव तथा तिङाम् ॥

—महाभाष्य अ० १। पा० ४। सू० २१। आ० २॥

ये ग्यारह (११) अर्थ सुप् के हैं—कर्म्म; कर्त्ता; करण; सम्प्रदान; अपादान; सम्बन्ध; अधिकरण; और हेतु तथा एकत्व; द्वित्व; और बहुत्व।

(प्रश्न)—'शब्द' कै प्रकार के होते हैं ?

(उत्तर)—नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् । नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ।।

महा० अ० ३ । पा० ३ । सू० १ । आ० १ ।।

तीन प्रकार के, अर्थात्—'यौगिक; रूढि; और योगरूढि' । परन्तु यास्कमुनि आदि निरुक्तकार और वैयाकरणों में शाकटायन-मुनि सब शब्दों को धातु से निष्पन्न अर्थात् यौगिक और योगिरूढि ही मानते, और पाणिनि आदि रूढि भी मानते हैं । परन्तु सब ऋषि मुनि वैदिक शब्दों को यौगिक और योगरूढि तथा लौकिक शब्दों में रूढ़ि भी मानते हैं ।

(प्रश्न)—उक्त यौगिक, रूढि और योगरूढि इन तीन प्रकार के शब्दों के क्या-क्या लक्षण हैं ?

(उत्तर)—'**यौगिक**' उनको कहते हैं कि जो प्रकृति और प्रत्ययार्थ तथा अवयवार्थ का प्रकाश करते हैं । जैसे—कर्त्ता, हर्त्ता, दाता, अध्येता, अध्यापक, लम्बकर्ण, शास्त्रज्ञान, कालज्ञान इत्यादि ।

'**रूढि**' उनको कहते हैं कि जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ न घटता हो, किन्तु ये सञ्ज्ञाबोधक हों । जैसे—खट्वा, माला, शाला, इत्यादि ।

'**योगरूढि**' उनको कहते हैं कि जो अवयवार्थ का प्रकाश करते हुए अपने योग से अन्य अर्थ में नियत हों । जैसे—दामोदर, सहोदर, पङ्कज, इत्यादि ।

उक्त तीन प्रकार के शब्द नामान्तर से भी प्रसिद्ध हैं, अर्थात् 'जाति; गुण; क्रिया; और यदृच्छाशब्द' । '**जातिवाचक**' उनको कहते हैं कि जिनका योग आकृति और बहुत व्यक्तियों के साथ हो । जाति के दो भेद हैं—सामान्यजाति और सामान्यविशेषजाति ।

'सामान्यजाति' उसको कहते हैं कि जिसका योग तुल्य आकृति और बहुत समान व्यक्तियों में रहता हो। जैसे—मनुष्य, पशु, पक्षी, इत्यादि। 'सामान्यविशेषजाति' उसको कहते हैं कि जो पदार्थ किसी में सामान्य और किसी से विशेष हो। जैसे—मनुष्यादि सामान्यजातियों में स्त्री, पुरुष इत्यादि; पशुओं में गौ, हस्ती, अश्व, इत्यादि और पक्षियों में हंस, काक, इत्यादि।

'गुणवाची' शब्द वे हैं जो द्रव्य के आश्रित हों। जैसे—धर्म, अधर्म, संस्कार, शुक्ल, हरित, नील, पीत, रूप, गन्ध, स्पर्श, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान इत्यादि।

'क्रियाशब्द' उनको कहते हैं कि जो चेष्टा और व्यापार आदि के वाचक हों। जैसे—भवति, करोति, पचति, आस्ते, शेते, इत्यादि।

और **'यदृच्छाशब्द'** उनको कहते हैं कि कोई मनुष्य यथावत् बोलने में असमर्थ होकर जिनका अन्यथा उच्चारण करे। जैसे—'ऋतक' के बोलने में 'लृतक' का उच्चारण करते हैं।

(प्रश्न)—इन शब्दों के प्रयोग कितने भेदों से होते हैं?

(उत्तर)—स्त्रीलिङ्ग, पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग, इन तीनों भेदों से।

(प्रश्न)—इन भेदों के लक्षण और प्रमाण क्या हैं?

(उत्तर)—स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः।
उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम्॥

महा॰ अ॰ ४। पा॰ १। सू॰ ३। आ॰ १॥

जिसके बड़े-बड़े लोम हों वह 'पुरुष'। जिसके स्तन और सिर के बाल बड़े-बड़े हों वह 'स्त्री,' और जो इन दोनों के मध्यस्थ चिह्न वाला हो वह 'नपुंसक' कहाता है।

पुँल्लिङ्ग के उदाहरण, जैसे—पुरुषः, पुरुषौ, पुरुषाः, इत्यादि। स्त्रीलिङ्ग के अम्बा, अम्बे, अम्बाः, इत्यादि। नपुंसकलिङ्ग के—नपुंसकम्, नपुंसके, नपुंसकानि, इत्यादि।

(प्रश्न)—इस प्रमाण और लक्षण से मनुष्य आदि चेतन व्यक्तियों में तो लिङ्गज्ञान होता है, परन्तु जड़ पदार्थों में नहीं, क्योंकि उनमें पुरुष, स्त्री और नपुंसक के चिह्न कुछ भी नहीं देख पड़ते हैं।

(उत्तर)—उनमें भी क्वचित्-क्वचित् कुछ-कुछ लिङ्गों के चिह्न देख पड़ते हैं। जैसे—भागा, भागौ, भागाः, इत्यादि यहां पुँल्लिङ्ग का चिह्न 'घञ्'। खट्वा, खट्वे, खट्वाः। नदी, नद्यौ, नद्यः, इत्यादि यहां स्त्रीलिङ्ग के चिह्न 'टाप्' और 'ङीप्' ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानि, यहां 'ल्युट्' प्रत्यय नपुंसक का चिह्न है।

जैसे इन शब्दों में व्याकरण की रीति से प्रत्यय लिङ्ग के द्योतक दिखलाई देते हैं, वैसे सर्वत्र वेद, निरुक्त और निघण्टु आदि में निर्देश देखकर शब्दों के लिङ्गों की व्यवस्था यथावत् जाननी उचित है। क्योंकि—'**लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य ॥**

महा० अ० २। पा० १। सू० १। आ० १॥

लिङ्गों का [पूर्ण] अनुशासन एक विशेष पुस्तक में करना योग्य [=शक्य] नहीं है, किन्तु लिङ्गज्ञान के अर्थ वेदादि शास्त्रों का [और लोक व्यवहार का] जानना सब को आवश्यक है।

(प्रश्न)—शब्दविषय कितना है?

(उत्तर)—सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधा

आथर्वणो वेदः । वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयः । एतावन्तं शब्दस्य प्रयोगविषयमननुनिशम्य 'सन्त्यप्रयुक्ता' इति वचनं केवलं साहसमात्रमेव । एतस्मिंश्चातिमहति शब्दस्य प्रयोगविषये ते ते शब्दास्तत्र तत्र नियतविषया दृश्यन्ते ।।

—महा० अ० १ । पा० १ । पस्पशाह्निके ।।

जो मनुष्य सातद्वीपयुक्त पृथिवी, तीन लोक अर्थात् नाम जन्म और स्थान, साङ्गोपाङ्ग वेद – अर्थात् एकसौ एक व्याख्यानयुक्त यजुः; हजार व्याख्यानयुक्त साम; इक्कीस व्याख्यानयुक्त ऋक्; नव व्याख्यानयुक्त अथर्ववेद; वाकोवाक्य अर्थात् दर्शनशास्त्र, 'इतिहासः पुराणम्'—साम गोपथ ब्राह्मण और वैद्यक अर्थात् चरक सुश्रुत आदि, इस बहुत बड़े शब्द के विषय को देखे सुने विना कोई कहे कि अदृष्टशब्दों का निर्देश कहीं नहीं किया, यह उसका कहना केवल हठ और अज्ञान का भरा हुआ है। क्योंकि जो साधारणता से प्रयोगविषय देखने में नहीं आता, वह विद्वानों के देखने में विस्तीर्ण शब्दविषय में आता है।

[अथाजन्तप्रकरणम्]

४०५–**अथ शब्दानुशासनम् ।। १ ।।** अ० १ । १ । १ ।।

यहां 'अथ' शब्द अधिकार के लिए है ।

शब्दों का अनुशासन अर्थात् उनकी शिक्षा का अधिकार किया जाता है ।

यहां से आगे क्रम से शब्दों का विषय दिखाया जायगा ।

(प्रश्न)—शब्द का लक्षण क्या है ?

४०६–**(उत्तर)–श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ।। २ ।।**

महा० १।१।२।।

जिसका कानों से सुनकर बोध हो, जो बुद्धि से निरन्तर ग्रहण करने के योग्य, उच्चारण से प्रकाशित, और आकाश जिसके रहने का स्थान है, वह 'शब्द' कहाता है ।

(प्रश्न)—शब्द के कै भेद हैं ?

(उत्तर)—चार, अर्थात्—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चारों में से नाम शब्दों का व्याख्यान इस ग्रन्थ में किया जायगा ।

(प्रश्न)—नामवाचक कौन शब्द हैं ?

४०७–**(उत्तर)–सत्त्वप्रधानानि नामानि ।। ३ ।।**

निरु० १ । १ ।।

जो मुख्यता से सत्त्वप्रधान अर्थात् द्रव्य और गुणों के वाचक शब्द हैं, उनको 'नाम' कहते हैं।

जैसे—गौः, अश्वः, पुरुषः, इत्यादि ॥

(प्रश्न)—व्याकरण में कैसे-कैसे शब्दों का विधान किया जाता है ?

४०८—(उत्तर)—समर्थः पदविधिः ॥४॥ अ० २ । १ । १ ॥

पदविधि समर्थ के आश्रित होती है। 'समर्थ' अर्थात् जिसके साथ जिसकी योग्यता हो, उसी के साथ उसका पदकार्य्य होता है।

जैसे—'भू+तव्यत्' यहां धातुसञ्ज्ञा के विना 'भू' शब्द प्रत्ययविधान में असमर्थ तथा 'तव्यत्' यह कृत और प्रत्ययसञ्ज्ञा के विना विधान होने ही में असमर्थ है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। तथा जिस पद के साथ जिसकी योग्यता हो, उसी से उसका समास होता है।

व्याकरण में सब सूत्रों से प्रथम इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, तत्पश्चात् सुबन्त विषय में प्रातिपदिकसञ्ज्ञा होती है॥

[आकारान्त पुँल्लिङ्ग पुरुष शब्द]।

प्रातिपदिकसञ्ज्ञाविधायक सूत्र—

४०९—अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ॥ ५ ॥

अ० १ । २ । ४५ ॥

यहां 'अर्थवत्' शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय नित्ययोग में किया है, क्योंकि शब्द और अर्थ का सनातन सम्बन्ध है।

केवल धातु और प्रत्यय [न्त] से पृथक् [जो] अर्थवान् शब्द [है] वह प्रातिपदिकसञ्ज्ञक हो।

जैसे—धन, वन, इत्यादि ।

४१०—कृत्तद्धितसमासाश्च ।। ६ ।। अ० १ । २ । ४६ ।।

कृदन्त, तद्धितान्त और समास भी प्रातिपदिकसञ्ज्ञक हों ।

जैसे—कृदन्त में—'अधीङ्+तृच्', तद्धित में—'उपगु+अण्' समास में—'राजन्+ङस्+पुरुष+सु' इत्यादि अव्युत्पन्न व्युत्पन्न दोनों पक्षों में उक्त सूत्रों से प्रातिपदिक सञ्ज्ञा होती है ।।

४११—ङ्याप्प्रातिपदिकात् ।। ७ ।। अ० ४ । १ । १ ।।

यह अधिकार सूत्र है ।

ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपादिक से स्वादिक, स्त्रीवाचक और तद्धित प्रत्यय होते हैं ।।

उनमें से 'स्वादिक' प्रत्यय यथा—

४१२—स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्य-स्ङसोसांङ्योस्सुप् ।। ८ ।। अ० ४ । १ । २ ।।

ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से 'सु' आदि इक्कीस (२१) प्रत्यय[१] हों ।।

४१३—सुपः ।। ९ ।। अ० १ । ४ । १०२ ।।

सुप् प्रत्याहार के जो तीन-तीन वचन हैं, वे एक-एक करके क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन सञ्ज्ञक हों ।।

४१४—विभक्तिश्च ।। १० ।। अ० १ । ४ । १०३ ।।

तिङ् और सुप् के जो तीन-तीन वचन हैं, वे विभक्तिसञ्ज्ञक हों ।।

१. इन्हीं प्रत्ययों के प्रथम 'सु' से लेकर अन्त्य 'प' पर्यन्त का 'सुप्' प्रत्याहार है ।।

अब यथाक्रम से विभक्तियों के रूप लिखते हैं—

वचन	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पञ्चमी	षष्ठी	सप्तमी
एकवचन	सु	अम्	टा	ङे	ङसि	ङस्	ङि
द्विवचन	औ	औट्	भ्याम्	भ्याम्	भ्याम्	ओस्	ओस्
बहुवचन	जस्	शस्	भिस्	भ्यस्	भ्यस्	आम्	सुप्

इस प्रकार से सातों विभक्तियों में अलग-अलग रूप जान लेना चाहिये ।।

४१५—द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने ।। ११ ।। अ० १ । ४ । २२ ।।

दो पदार्थों के कहने की इच्छा हो, तो द्विवचन और एक पदार्थ के कहने की इच्छा हो, तो एकवचन हो ।

जैसे—पुरुष+सु; 'पुरुष+औ' ।।

४१६—बहुषु बहुवचनम् ।। १२ ।। अ० १ । ४ । ११ ।।

बहुत पदार्थों की कहने की इच्छा हो, तो बहुवचन हो ।

जैसे—'पुरुष+सु; पुरुष+औ; पुरुष+जस्' ।।

इनमें से प्रथम—'पुरुष+सु' इसका साधन, जैसे—

४१७—उपदेशेऽजनुनासिक इत् ।। १३ ।।

अ० १ । ३ । २ ।।

जो उपदेश में अनुनासिक अच् है वह इत्सञ्ज्ञक हो ।

'उपदेश' यहां उसको कहते हैं कि जो धातु, सूत्र और गणों में पाणिन्यादि मुनियों का प्रत्यक्ष कथन है। इस सूत्र से 'सु' इसके 'उकार' की इत्सञ्ज्ञा होकर—

४१८—तस्य लोपः ।। १४ ।। अ० १ । ३ । ९ ।।

जिसकी इत्सञ्ज्ञा हुई हो, उसका लोप हो।

लोप होकर—'पुरुष+स्' इस अवस्था में—

४१९—सुप्तिङन्तं पदम् ।। १५ ।। अ० १ । ४ । १४ ।।

जिसके अन्त में सुप् वा तिङ् हो, उस समुदाय की पदसञ्ज्ञा हो।

इससे 'सु' और 'तिप्' आदि प्रत्ययान्त शब्दों की पदसञ्ज्ञा होती है। तिङन्तों की व्याख्या 'आख्यातिक' में लिखी जायगी।

'पुरुष+सु' इसकी पदसञ्ज्ञा होकर, पश्चात्—

४२०—ससजुषो रुः ।। १६ ।। अ० ८ । २ । ६६ ।।

सकारान्त पद और सजुष् शब्द के स् और ष् को रु आदेश हो।

'पुरुष+रु' इस अवस्था में 'रु' के उकार की इत्सञ्ज्ञा[1] होकर लोप[2] हो गया—'पुरुष+र्' ।।

४२१—विरामोऽवसानम् ।। १७ ।। अ० १ । ४ । १०९ ।।

---

१. इत्संज्ञा—(उपदेशेऽजनुनासिक इत् ।। १ । ३ । २) नामिक—१३ ।।
२. लोप—(तस्य लोपः ।। १ । ३ । ९) नामिक—१४ ।।

वक्ता की उक्ति का जो विराम अर्थात् ठहरना है, उसकी अवसान-सञ्ज्ञा हो।

जैसे—'पुरुष+र्' इससे रेफ की अवसानसञ्ज्ञा हुई॥

अवसान-सञ्ज्ञा का फल—

४२२–खरवसानयोर्विसर्जनीयः॥ १८॥

अ० ८। ३। १५॥

रेफ से परे खर्प्रत्याहार हो, तो [तथा] अवसान में रेफ को विसर्जनीय आदेश हो पदान्त में।

इससे रेफ के स्थान में विसर्जनीय हो के—पुरुषः॥

अब प्रथमा विभक्ति का द्विवचन—'पुरुष+औ' इस अवस्था में पूर्व पर को वृद्धि एकादेश[1] होकर—पुरुषौ सिद्ध हुआ॥

प्रथमा विभक्ति का बहुवचन—'पुरुष+जस्' इस अवस्था में—

४२३–चुटू॥ १९॥ अ० १। ३। ७॥

जो प्रत्यय के आदि में चवर्ग और टवर्ग हों, तो उनकी इत्सञ्ज्ञा हो।

इससे 'जकार' की इत्सञ्ज्ञा होकर लोप हो गया। 'पुरुष+अस्' इस अवस्था में—

४२४–न विभक्तौ तुस्माः॥ २०॥ अ० १। ३। ४॥

जो विभक्तियों के अन्त में तवर्ग, स् और म् हैं, उनकी इत्सञ्ज्ञा न हो।

---

१. वृद्धिरेकादेशः—(वृद्धिरेचि॥ ६। १। ८८) सन्धि—१३७॥

इससे 'पुरुष+अस्' यहां अन्त के सकार की इत्सञ्ज्ञा न हुई। **अब** इस अवस्था में—

४२५–प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ।। २१ ।। अ० ६ । १ । १०१ ।।

जो अक् प्रत्याहार से परे प्रथमा और द्वितीया का अच् हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो।

जैसे—'पुरुषास्'। रुत्व, विसर्जनीय होकर—पुरुषाः ।।

अब **द्वितीया** विभक्ति का एकवचन—'पुरुष+अम्' इस अवस्था में—

४२६–अमि पूर्वः ।। २२ ।। अ० ६ । १ । १०६ ।।

अक् प्रत्याहार से अम् का अच् परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो।

जैसे—पुरुषम् ।।

द्वितीया का द्विवचन—'पुरुष+औट्' यहां टकार[1] की इत्सञ्ज्ञा और लोप तथा आकार औकार को वृद्धि एकादेश होकर—पुरुषौ हुआ ।।

द्वितीया का बहुवचन—'पुरुष+शस्' इस अवस्था में—

४२७–लशक्वतद्धिते ।। २३ ।। अ० १ । ३ । ८ ।।

तद्धित से अन्यत्र प्रत्यय के आदि जो लकार, शकार और कवर्ग, उनकी इत्सञ्ज्ञा हो।

तब इत्सञ्ज्ञक शकार का लोप हो गया। जैसे—'पुरुष+अस्'। इस अवस्था में पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो के—'पुरुषा+स्।

१. इसमें टकार अनुबन्ध सुट् प्रत्याहार के लिये है।

४२८–तस्माच्छसो नः पुंसि ।। २४ ।। अ० ६ । १ । १०२ ।।

[पुँल्लिङ्ग विषय में] किये हुए पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश से परे शस् प्रत्यय के सकार को नकार आदेश हो ।

जैसे—पुरुषान् ।।

अब **तृतीया** विभक्ति का एकवचन—'पुरुष+टा' इस अवस्था में—

४२९–टाङसिङसामिनात्स्याः ।। २५ ।। अ० ७ । १ । १२ ।।

अदन्त अङ्ग से परे टा, ङसि, ङस् के स्थान में क्रम से इन, आत्, स्य ये तीन आदेश हों ।

जैसे– 'पुरुष+इन' । अब पूर्व पर को गुण[1] एकादेश होकर—पुरुषेन ।

४३०–अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।। २६ ।।

अ० ८ । ४ । २ ।।

एकपद में अट् प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् इनके व्यवधान में भी जो रेफ् और षकार से परे नकार हो, तो उसके स्थान में णकारादेश हो ।

जैसे—पुरुषेण ।।

तृतीया विभक्ति का द्विवचन—'पुरुष+भ्याम्' इस अवस्था में—

४३१–यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् ।। २७ ।।

अ० १ । ४ । १३ ।।

---

१. गुणः—(आद्गुणः ।। ६ । १ । ८७) सन्धि०—१३६ ।

जिस धातु वा प्रातिपदिक से प्रत्यय का विधान करें उसकी तथा वह धातु वा प्रातिपदिक जिसके आदि में हो उस की भी [प्रत्यय परे रहने पर] अङ्गसञ्ज्ञा होती है।

इससे सु आदि सब प्रत्ययों के परे पूर्व की अङ्गसञ्ज्ञा होती है।

४३२–सुपि च ॥ २८ ॥ अ० ७ । ३ । १०२ ॥

जो यञादि सुप् परे हो, तो अकारान्त अङ्ग को दीर्घ हो।

जैसे—पुरुषाभ्याम् ॥

तृतीया का बहुवचन—'पुरुष+भिस्' इस अवस्था में—

२३३–अतो भिस ऐस् ॥ २९ ॥ अ० ७ । १ । ९ ॥

जो अकारान्त अङ्ग से परे भिस् हो, तो उसको ऐस् आदेश हो।

अनेकाल् होने से भिस् मात्र के स्थान में ऐस् हुआ। अब वृद्धि[1] रुत्व[2] और विसर्जनीय[3] होकर—पुरुषैः ॥

४३४–बहुलं छन्दसि ॥ ३० ॥ अ० ७ । १ । १० ॥

परन्तु वैदिकप्रयोगों में भिस् के स्थान में ऐस् आदेश बहुल करके होता है।

जैसे—देवेभिः; देवैः। करणेभिः; करणैः। इत्यादि सब अकारान्त शब्दों में दो-दो रूप होंगे ॥

१. वृद्धिः—(वृद्धिरेचि ॥ ६ । १ । ८८) सन्धि०—१३७ ॥
२. रुत्वम्—(ससजुषो रुः ॥ ८ । २ । ६६) नामिक १६ ॥
३. विसर्जनीयः—(खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ ८ । ३ । १५) सन्धि—२५८ ॥

चतुर्थी का एकवचन = 'पुरुष + ङे' इस अवस्था में—

४३५–ङेर्यः ॥ ३१ ॥ अ० ७ । १ । १३ ॥

जो अकारान्त अङ्ग से परे ङे हो, तो उसके स्थान में 'य' आदेश हो।

जैसे—'पुरुष + य'। यहां भी दीर्घ[1] होकर—पुरुषाय ॥

द्विवचन—'पुरुष + भ्याम्' = पुरुषाभ्याम् ॥

बहुवचन—'पुरुष + भ्यस्'—

४३६–बहुवचने झल्येत् ॥ ३२ ॥ अ० ७ । ३ । १०३ ॥

बहुवचन में झलादि सुप् परे हो, तो अकारान्त अङ्ग को एकार आदेश हो।

जैसे—'पुरुषे + भ्यस्'। रुत्व[2], विसर्जनीय[3] होकर—पुरुषेभ्यः ॥

पञ्चमी का एकवचन—'पुरुष + ङसि' ङसि के स्थान में आत्[4] और उससे सवर्णदीर्घादेश[5] होकर—पुरुषात् ॥

पञ्चमी का द्विवचन—'पुरुष + भ्याम्' पूर्ववत् दीर्घ होके—पुरुषाभ्याम् ॥

बहुवचन—'पुरुष + भ्यस्' = पुरुषेभ्यः ॥

---

१. दीर्घः—(सुपि च ॥ ७ । ३ । १०२) नामिक—२८ ॥
२. रुत्वम्—(ससजुषो रुः ॥ ८ । २ ॥ ६६) नामिक—१६ ॥
३. विसर्जनीयः—(खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ ८ । ३ । १५) सन्धि०—२५८ ॥
४. आत् (टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ ७ । १ । १२) नामिक—२५ ॥
५. सवर्णदीर्घादेशः—(अकः सवर्णे दीर्घः ॥ ६ । १ । १००) सन्धि०—१३३ ॥

षष्ठी का एकवचन—'पुरुष+ङस्' इसके स्थान में उक्तसूत्र (२५) से 'स्य' आदेश होकर—पुरुषस्य ॥

द्विवचन—'पुरुष+ओस्'—

४३७–ओसि च ॥ ३३ ॥ अ० ७ । ३ । १०४ ॥

ओस् विभक्ति परे हो, तो अकारान्त अङ्ग को एकार आदेश हो ।

इससे 'पुरुष' के अन्त्य अकार को एकार होकर—'पुरुषे+ओस्' हुआ । एकार को अय् और सकार को रुत्व, विसर्जनीय होकर—पुरुषयोः ॥

बहुवचन आम्—'पुरुष+आम्'—

४३८–ह्रस्वनद्यापो नुट् ॥ ३४ ॥ अ० ७ । १ । ५४ ॥

ह्रस्व स्वर, नदीसञ्ज्ञक ईकारान्त ऊकारान्त, और आबन्त से परे आम् को नुट् का आगम हो ।

टित्त्व धर्म से आम् के आदि[1] में नुट् हुआ । जैसे—'पुरुष+नुट्+आम्' इस अवस्था मे उकार और टकार की इत्सञ्ज्ञा[2] और लोप होकर—'पुरुष+न्+आम्' । आकार में नकार मिल के—'पुरुष नाम् ॥

४३९–नामि ॥ ३५ ॥ अ० ६ । ४ । ३ ॥

---

१. टित् आदि में—(आद्यन्तौ टकितौ ॥ १ । १ । ४५) सन्धि०—८० इससे हुआ ॥

२. उकारेत्संज्ञा–(उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ १ । ३ । २) नामिक–१३ ॥ टकारेत्संज्ञा—(हलन्त्यम् ॥ १ । ३ । ३) सन्धि०—१६ ।

नाम् अर्थात् जो षष्ठी का बहुवचन नुट् सहित आम् परे हो, तो अजन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो।

जैसे—पुरुषानाम्, यहां नकार को णकार[1] होके—पुरुषाणाम्॥

सप्तमी का एकवचन—ङि—'पुरुष+ङि', ङ् की इत्सञ्ज्ञा[2] और लोप होकर अकार और इकार के स्थान में गुण एकादेश एकार हुआ—पुरुषे॥

द्विवचन—'पुरुष+ओस्' पूर्ववत् एकार, अय्[3] और स् को रुत्व, विसर्जनीय होके—पुरुषयोः॥

सप्तमी का बहुवचन—सुप्—'पुरुष+सुप्' अन्त्य हल् पकार की इत्सञ्ज्ञा और पूर्ववत् एकार होकर 'पुरुषे+सु' इस अवस्था में—

४४०–आदेशप्रत्यययोः॥ ३६॥ अ० ८। ३। ५९॥

इणप्रत्याहार और कवर्ग से परे आदेश और प्रत्यय के सकार को मूर्द्धन्य अर्थात् षकार आदेश हो।

जैसे—पुरुषेषु॥

४४१–सम्बोधने च॥ ३७॥ अ० २। ३। ४७॥

सम्बोधन अर्थ[4] में भी प्रथमा विभक्ति हो।

---

१. णकार—(अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि॥ ८। ४। २) नामिक-२६॥
२. ङ् की इत्सञ्ज्ञा—(लशक्वतद्धिते॥ १। ३। ८) नामिक-२३॥
३. अय्—(एचोऽयवायावः॥ ६। १। ७८) सन्धि०—१७१॥
४. 'सम्बोधन'—अत्यन्त चेताने को कहते हैं॥

प्रातिपदिकार्थ से सम्बोधन अर्थ अधिक होने से पूर्वसूत्र से **प्रथमा**[1] विभक्ति प्राप्त न थी, इसलिये यह सूत्र कहा ।

४४२–सामन्त्रितम् ।। ३८ ।। अ० २ । ३ । ४८ ।।

सम्बोधन में जो प्रथमा विभक्ति वह आमन्त्रित सञ्ज्ञक हो ।।

४४३–एकवचनं सम्बुद्धिः ।। ३९ ।। अ० २ । ३ । ४९ ।।

आमन्त्रित प्रथमा विभक्ति के एकवचन की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा हो ।

जैसे—'पुरुष+सु' उकार की इत्सञ्ज्ञा होके 'पुरुष स्' इस अवस्था में—

४४४–एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ।। ४० ।। अ० ६ । १ । ६९ ।।

जो एङन्त और ह्रस्वान्त प्रातिपदिक से परे सम्बुद्धि का हल् हो तो उसका लोप हो ।

सम्बोधन अर्थ दिखाने के लिये—हे, अङ्ग, भोस्, ओ इत्यादिक शब्द भी सम्बोधन प्रथमान्त शब्द के साथ रहते हैं । जैसे—हे पुरुष । हे पुरुषौ । हे पुरुषाः । वा—पुरुष । पुरुषौ पुरुषाः[2] ।।

इसी प्रकार **परमेश्वर, शिव, कृष्ण, वृक्ष, घट, पट, ग्रन्थ,**

---

१. (प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥ २ । ३ । ४६) ॥

२. पुरुषः पुरुषौ, पुरुषाः । पुरुषम्, पुरुषौ, पुरुषान् । पुरुषेण, पुरुषाभ्याम्, पुरुषैः । पुरुषाय, पुरुषाभ्याम् पुरुषेभ्यः । पुरुषात्, पुरुषाभ्याम्, पुरुषेभ्यः । पुरुषस्य, पुरुषयोः, पुरुषाणाम् । पुरुषे, पुरुषयोः, पुरुषेषु । हे पुरुष, हे पुरुषौ, हे पुरुषाः ॥

वेद, न्याय, धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, व्यवहार, परमार्थ इत्यादि अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप जानने चाहियें।

अकारान्त नियतनपुंसकलिङ्ग धन शब्द—

'धन' शब्द को पूर्ववत् प्रातिपदिकसञ्ज्ञा आदि कार्य होकर—'धन+सु' इस अवस्था में—

४४५–अतोऽम् ॥ ४१ ॥ अ० ७ । १ । २४ ॥

अकारान्त अङ्ग [नपुंसक लिङ्ग] से परे सु और अम् विभक्तियों के स्थान में अम् आदेश हो।

इस अम् करने का यही प्रयोजन है कि सु और अम् का लुक्[1] पाता है, सो न हो—धनम् ॥

'धन+औ'—

४४६–नपुंसकाच्च ॥ ४२ ॥ अ० ७ । १ । १९ ॥

जो नपुंसकलिङ्ग से परे औङ्[2] हो, तो उसके स्थान में शी आदेश हो।

जैसे—'धन+शी'। श् की इत्सञ्ज्ञा हो के—'धन+ई' इस अवस्था में (आद्गुणः ॥ ६ । १ । ८७) इस सूत्र से गुण होके—**धने** ॥

'धन+जस्'—

४४७–जश्शसोः शिः ॥ ४३ ॥ अ० ७ । १ । २० ॥

---

१. (स्वमोर्नपुंसकात् ॥ ७ । १ । २३) नामिक—७२ इस सूत्र से लुक् प्राप्त था ॥

२. 'औङ्' यह प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन की सूचना है ॥

जो अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिक से परे जस् और शस् विभक्ति हों तो उनके स्थान में शि आदेश हो ।

जैसे—'धन+शि' ।

४४८–शि सर्वनामस्थानम् ॥ ४४ ॥ अ० १ । १ । ४१ ॥

शि सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक हो ।

शकार की इत्सञ्ज्ञा होके—'धन इ' इस अवस्था में गुण[1] प्राप्त हुआ, उसको बाध के—

४४९–नपुंसकस्य झलचः ॥ ४५ ॥ अ० ७ । १ । ७२ ॥

जो सर्वनामस्थान परे हो, तो झलन्त और अजन्त नपुंसकलिङ्ग को नुम् का आगम हो ।

'धन+नुम्+इ' यहां मकार और उकार की इत्सञ्ज्ञा होके—'धनन्+इ' ऐसा हुआ । इस अवस्था में—

४५०–सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ॥ ४६ ॥ अ० ६ । ४ । ८ ॥

जो सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो ।

इस 'धन' शब्द के अन्त को दीर्घ हो के—धनानि ॥

'धन+अम्' यहां अम् विभक्ति का लुक् नहीं होता है, किन्तु उसके स्थान में पूर्ववत् अम् आदेश होके प्रथमाविभक्ति के तुल्य—धनम् । धने । धनानि ॥

तृतीया विभक्ति से लेकर सब विभक्तियों में 'पुरुष' शब्द

---

१. गुणः—(आद्गुणः ॥ ५ । १ । ८७ ॥) सन्धि०—१३६ ॥

के समान प्रयोग समझना चाहिये। जैसे—धनेन। धनाभ्याम्। धनैः। धनाय। धनाभ्याम्। धनेभ्यः। धनात्। धनाभ्याम्। धनेभ्यः। धनस्य। धनयोः धनानाम्। धने। धनयोः। धनेषु। सम्बोधन चेतन ही में घट सकता है, इसलिये इसके सम्बोधन में प्रयोग नहीं बनते ॥

वस्त्र, शस्त्र, पात्र, बल, वन, जल, सलिल, गृह इत्यादि नियत नपुंसकलिङ्गों के भी रूप 'धन' शब्द के समान जानना चाहिये।

अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द कोई भी नहीं है, क्योंकि स्त्रीलिङ्ग में अकारान्त से टाप् वा ङीप् आदि प्रत्यय हो जाते हैं ॥

जो अकारान्त धर्म शब्द **पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में है,** उसके रूप भी पुरुष और धन शब्द के समान जानना चाहिये। जैसे—धर्मः। धर्मौ। धर्माः। धर्मम्। धर्मौ। धर्मान्। धर्मेण। धर्माभ्याम्। धर्मैः। धर्माय। धर्माभ्याम्। धर्मेभ्यः। धर्मात्। धर्माभ्याम्। धर्मेभ्यः। धर्मस्य। धर्मयोः। धर्माणाम्। धर्मे। धर्मयोः। धर्मेषु।

नपुंसकलिङ्ग में—धर्मम्। धर्मे। धर्माणि। धर्मम्। धर्मे। धर्माणि इत्यादि।

अथ आकारान्तविषयः ॥

आकारान्त सोमपा शब्द—

'सोम' ओषधियों के रस को कहते हैं, उसको जो पिये वा उसकी रक्षा करे उसका नाम 'सोमपा' है। यह **'सोमपा' शब्द** विशेष्य के अनुसार **तीनों लिङ्गों** में होता है। जैसे—सोमपाः पण्डितः, सोमपा स्त्री, सोमपं कुलम्।

उनमें से प्रथम **पुँल्लिङ्ग, जैसे**—'सोमपा+सु' इत्सञ्ज्ञा और विसर्जनीय होके—सोमपाः । 'सोमपा+औ' वृद्धि एकादेश होके—सोमपौ । 'सोमपा+जस्' जकार की इत्सञ्ज्ञा और लोप तथा सकार को विसर्जनीय और [दीर्घ] एकादेश होके—सोमपाः ।।

यहां एकवचन और बहुवचन में भेद तभी होगा कि जब इसके साथ विशेष्यवाची का निर्देश किया जायगा । जैसे—सोमपाः पण्डितः । सोमपाः पण्डिताः ।

'सोमपा+अम्' पूर्वरूप एकादेश होके—सोमपाम् । सोमपौ—पूर्ववत् ।।

'सोमपा+शस्' इस अवस्था में—

४५१–यचि भम् ।। ४७ ।। अ० १ । ४ । १८ ।।

यादि अजादि सर्वनामस्थानभिन्न कप् प्रत्ययावधि[1] स्वादि प्रत्यय परे हों, तो पूर्व की भसञ्ज्ञा हो ।

४५२–आतो धातोः ।। ४८ ।। अ० ६ । ४ । १४० ।।

भसञ्ज्ञक आकारान्त धातु का लोप हो ।

जो आदेश सामान्य से विधान किया जाता है वह (अलोऽन्त्यस्य ।। १ । १ । ५१) इस परिभाषाबल से अन्त्य वर्ण के स्थान में समझना चाहिये । 'सोमपा' शब्द में 'पा' आकारान्त धातु है, इसके अन्त्य आकार का लोप होके सोमपः ।।

---

१. कप्प्रत्ययावधि पञ्चमाध्याय के (उरः प्रभृतिभ्यः कप् ।। ५ । ४ । १५१) इस सूत्र तक प्रत्यय लेना चाहिये ।।

सोमपा। सोमपाभ्याम्। सोमपाभिः। सोमपे। सोमपाभ्याम्। सोमपाभ्यः। सोमपः। सोमपाभ्याम्। सोमपाभ्यः। सोमपः। सोमपोः। सोमपाम्। सोमपी। सोमपोः। सोमपासु। सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं—हे सोमपाः। हे सोमपौ। हे सोमपाः॥

स्त्रीलिङ्ग में भी 'सोमपा' शब्द के प्रयोग ऐसे ही होते हैं। परन्तु नपुंसकलिङ्ग में कुछ विशेषता है—'सोमपा+सु' इस अवस्था में—

४५३–ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ ४६ ॥

अ० १ । २ । ४७ ॥

जो नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान अजन्त प्रातिपदिक है, उसको ह्रस्वादेश हो।

जैसे—'सोमपा+सु'। अब सब विभक्तियों में 'धन' शब्द के समान सब कार्य समझना चाहिये। जैसे—सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। सोमपेन। सोमपाभ्याम्। सोमपैः। सोमपाय। सोमपाभ्याम्। सोमपेभ्यः। सोमपात्। सोमपाभ्याम्। सोमपेभ्यः। सोमपस्य। सोमपयोः। सोमपानाम्। सोमपे। सोमपयोः। सोमपेषु॥

इसी प्रकार—**गोजा, प्रथमजा, गोषा, कूपखा, दधिक्रा, आज्यपा, कीलालपा,** इत्यादि शब्दों के भी प्रयोग तीनों लिङ्गों में समझना चाहिये॥

आकारान्त कन्या शब्द—

'कन्या+सु' इस अवस्था में—

४५४–हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ॥ ५० ॥

अ० ६ । १ । ६८ ॥

हलन्त और दीर्घ ङीप्, ङीष्, ङीन्, टाप्, डाप् चाप् ये जिनके अन्त में हों, उनसे परे जो सु, ति, सि इनका अपृक्त हल् उसका लोप हो।

जैसे—कन्या ॥

'कन्या+औ' इस अवस्था में—

४५५–औङ आपः ॥ ५१ ॥ अ० ७ । १ । १८ ॥

जो आबन्त अङ्ग से परे औङ्[1] हो तो उसको शी आदेश हो। शकार की इत्सञ्ज्ञा और गुण होके—कन्ये ॥

'कन्या+जस्' जकार की इत्सञ्ज्ञा, दीर्घ एकादेश रुत्व, विसर्जनीय होके—कन्याः ॥

'कन्या+अम्' पूर्वरूप एकादेश होके—कन्याम् ॥

'कन्या+औट्' पूर्ववत्—कन्ये ॥

'कन्या+शस्' शकार की इत्सञ्ज्ञा, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्व और विसर्जनीय होके—कन्याः ॥

'कन्या+टा' इस अवस्था में—

४५६–आङि चापः ॥ ५२ ॥ अ० ७ । ३ । १०५ ॥

आबन्त अङ्ग से परे टा [और ओस्] विभक्ति हो तो उसको[2] एकार हो।

जैसे—'कन्ये+टा' टकार की इत्सञ्ज्ञा होके—'कन्ये+आ' इस अवस्था में अय् आदेश होकर—कन्यया ॥

कन्याभ्याम् । कन्याभिः ॥

'कन्या+ङे' इस अवस्था में—

---

१. 'औङ्' यह प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन की सूचना है ॥

२. अर्थात् आबन्त अङ्ग के अन्त्य अल् को । सम्पा० ॥

४५७–याडापः ।। ५३ ।। अ० ७ । ३ । ११३ ।।

आबन्त अङ्ग से परे ङित् प्रत्यय को याट् का आगम हो ।

जैसे—'कन्या+याट्+ङे' टकार, ङकार की इत्सञ्ज्ञा और लोप तथा [वृद्धिरेचि] इससे वृद्धि एकादेश होके—कन्यायै ।।

कन्याभ्याम् । कन्याभ्यः । कन्यायाः । कन्याभ्याम् । कन्याभ्यः । कन्यायाः । कन्या+ओस्' यहां एकार आदेश, अय्, रुत्व और विसर्जनीय होके—कन्ययोः । 'कन्या+आम्' = कन्यानाम्[1] ।।

'कन्या+याट्+ङि' इस अवस्था में—

४५८–ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ।। ५४ ।। अ० ७ । ३ । ११६ ।।

आबन्त, नदीसञ्ज्ञक और नी इन अङ्गों से परे ङि के स्थान में आम् आदेश हो ।

जैसे—'कन्याया+आम्' यहां दीर्घ एकादेश होके—कन्यायाम् ।।

कन्ययोः । कन्यासु ।।

सम्बोधन में इतना विशेष है कि—'कन्या+सु' पूर्ववत् सकार का लोप होके—

४५९–सम्बुद्धौ च ।। ५५ ।। अ० ७ । ३ । १०६ ।।

सम्बुद्धि परे हो तो आबन्त अङ्ग को एकार आदेश हो ।

जैसे—हे कन्ये । हे कन्ये । हे कन्याः[2] ।।

---

१. (ह्रस्वनद्यापो नुट् । ७ । १ । ५४) नामिक—३४, इससे नुट् हो गया ।।

२. कन्या, कन्ये, कन्या । कन्याम्, कन्ये, कन्याः । कन्यया, कन्याभ्याम्, कन्याभिः । कन्यायै, कन्याभ्याम्, कन्याभ्यः । कन्यायाः, कन्याभ्याम्, कन्याभ्यः । कन्यायाः, कन्ययोः, कन्यानाम् । कन्यायाम् कन्ययोः, कन्यासु । हे कन्ये, हे कन्ये, हे कन्याः ।।

इसी प्रकार—**प्रजा, जाया, छाया, माया, मेधा, अजा** इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के प्रयोग जानना चाहिए ।।

परन्तु **जरा** शब्द में कुछ विशेष है ।

४६०—जराया जरसन्यतरस्याम् ।। ५६ ।।

अ० ७ । २ । १०१ ।।

अजादि विभक्तियाँ परे हों तो, जरा शब्द को जरस् आदेश हो, विकल्प करके ।

जरा । जरसौ; जरे । जरसः; जराः, इत्यादि ।।

अथ इकारान्तविषयः ।।

इकारान्त नियतपुँल्लिङ्ग अग्नि शब्द—

पूर्ववत् सब कार्य होकर—अग्निः । 'अग्नि+औ' यहां पूर्वसवर्णदीर्घ[1] एकादेश ईकार होके—अग्नी ।।

'अग्नि+जस्' इस अवस्था में जकार की इत्सञ्ज्ञा होके—

४६१—जसि च ।। ५७ ।। अ० ७ । ३ । १०९ ।।

जस् प्रत्यय परे हो तो, जो पूर्व ह्रस्वान्त अङ्ग, उसको गुण हो ।

इससे इकार को एकार गुण और एकार को 'अय्' आदेश होकर—अग्नयः ।।

४६२—वा०—जसादिषु च्छन्दसि वावचनं प्राङ् णौ चङ्युपधायाः ।। ५८ ।। अ० ७ । ३ । १०९ ।।

---

१. पूर्वसवर्ण०—(प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ।। ६ । १। १०१) नामिक—२१ ।।

जस् आदि विभक्तियों में इस प्रकरण में जो कार्य कहे हैं, वे वेद में विकल्प करके हों।

जैसे—गुण का विकल्प—अग्नयः; अग्न्यः[1]। शतक्रतवः; शतक्रत्वः। पशवे; पश्वे ॥

'अग्नि+अम्' यहां (अमि पूर्वः ॥ ६ । १ । १०६) इस सूत्र से पूर्वरूप होके—अग्निम्। 'अग्नि+औ' पूर्ववत्—अग्नी। 'अग्नि+शस्' पूर्वसवर्णदीर्घ और सकार को नकारादेश होके—अग्नीन् ॥

'अग्नि+टा'—

४६३–शेषो घ्यसखि ॥ ५९ ॥ अ० १ । ४ । ७ ॥

शेष अर्थात् जिनकी नदी सञ्ज्ञा न हो ऐसे जो सखिभिन्न ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द हैं, उनकी घिसञ्ज्ञा हो ॥

इससे अग्नि शब्द की घि सञ्ज्ञा होके—

४६४–आङो नास्त्रियाम् ॥ ६० ॥ अ० ७ । ३ । १२० ॥

जो घिसञ्ज्ञक अङ्ग से परे आङ् अर्थात् टा विभक्ति हो, तो उसके स्थान में ना आदेश हो, स्त्रीलिङ्ग में न हो।

अग्निना ॥

अग्निभ्याम्। अग्निभिः ॥

'अग्नि+ङे'—

४६५–घेर्ङिति ॥ ६१ ॥ अ० ७ । ३ । १११ ॥

---

१. जहाँ गुण नहीं होता है, वहाँ (इको यणचि ॥ ६ । १ । ७७) सन्धि०—१७८ इससे यण् आदेश हो जाता है ॥

ङित्प्रत्यय परे हो, तो घ्यन्त अङ्ग को गुणादेश हो।
उसको 'अय्' आदेश होके—अग्नये ॥

अग्निभ्याम्। अग्निभ्यः ॥

'अग्नि+ङसि' ङकार [इकार] की इत्सञ्ज्ञा और [अङ्ग के] इकार को गुण हो के—'अग्ने+अस्' इस अवस्था में—

४६६--ङसिङसोश्च ॥ ६२ ॥ अ० ६। १। १०९ ॥

जो पदान्त एङ् से परे [ङसि और] ङस् सम्बन्धी अकार हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो।

जैसे—अग्नेः ॥

अग्निभ्याम्। अग्निभ्यः। अग्नेः। 'अग्नि+ओस्' यहां य् आदेश हो गया—अग्न्योः। 'अग्नि+आम्' यहां नुट्[1] और दीर्घ[2] होकर—अग्नीनाम् सिद्ध हुआ ॥

'अग्नि+ङि' इस अवस्था में—

४६७--अच्च घेः ॥ ६३ ॥ अ० ७। ३। ११९ ॥

जो घिसञ्ज्ञक इकारान्त उकारान्त शब्द से परे ङि विभक्ति हो, तो उसके स्थान में औकार और घिसञ्ज्ञक शब्द के इकार उकार को अकारादेश हो।

जैसे—'अग्न+औ' वृद्धिएकादेश होके—अग्नौ ॥

अग्न्यो। अग्निषु ॥

सम्बोधन—'अग्नि+सु' यहां सम्बुद्धिसञ्ज्ञा होके—

---

१. नुट्—(ह्रस्वनद्यापो नुट् ॥ ७। १। ५४) नामिक—३४ ॥
२. दीर्घ—(नामि ॥ ६। ४। ३) नामिक—३५ ॥

४६८--ह्रस्वस्य गुणः ।। ६४ ।। अ० ७ । ३ । १०८ ।।

सम्बुद्धि परे हो, तो ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो ।

इससे गुण होके (एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ।। ६ । १ । ६९) इस सूत्र से सकार का लोप हुआ—हे अग्ने ।।

हे अग्नी । हे अग्नयः । यहां संहिता क्यों नहीं होती, सो (हैहेप्रयोगे हैहयोः ।। ८ । २ । ८५) इस सूत्र[1] से 'हे' की प्लुत-सञ्ज्ञा होके उसको प्रकृतिभाव[2] हो जाता है ।।

इसी प्रकार **वह्नि, रवि,** इत्यादि इकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों का साधुत्वविषय जानना चाहिये ।।

परन्तु **पति** शब्द में इतना विशेष है—

४६९—पतिः समास एव ।। ६५ ।। अ० १ । ४ । ८ ।।

पति शब्द समास ही में घिसञ्ज्ञक हो ।

इससे समास से अन्यत्र पति शब्द को घिसञ्ज्ञा के कार्य नहीं होते—पत्या । पत्ये ।।

'पति+ङसि' यहां 'पत्यस्' इस अवस्था में—

४७०—ख्यत्यात्परस्य ।। ६६ ।। अ० ६ । १ । ११२ ।।

जो ख्य और त्य इनसे परे [ङसि और] ङस् सम्बन्धी अकार हो, तो उसको उकार आदेश हो ।

पत्युः ।।

---

१. यह सूत्र अष्टमाध्याय में प्लुतप्रकरण में कहा है ।।

२. प्रकृतिभाव—(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ।। ६ । १ । १२४) सन्धि०—१७० ।।

'पति+ङि' को औकार[1] आदेश हो गया—पत्यौ ॥

और **सखि** शब्द में विशेष यह है कि—'सखि+सु'—

४७१--अनङ् सौ ॥ ६७ ॥ अ० ७ । १ । ९३ ॥

जो सम्बुद्धिभिन्न सु विभक्ति परे हो, तो सखि शब्द को अनङ् आदेश हो।

अनङ् आदेश के अ, ङ् इनकी इत्सञ्ज्ञा और लोप तथा दीर्घ[2] होकर—'सखान्+सु' (हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्० ॥ ६ । १ । ६८ ।) इस (ना० ५०) सूत्र से सु का लोप, और—

४७२—नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ६८ ॥

अ० ८ । २ । ७ ॥

प्रातिपदिकान्त पद के नकार का लोप हो।

'सखि+औ' इस अवस्था में—

४७३—सख्युरसम्बुद्धौ ॥ ६९ ॥ अ० ७ । १ । ९२ ॥

असम्बुद्धि के जो सखि शब्द, उससे परे जो सर्वनामस्य णित् हो।

इससे णित् होकर—

४७४--अचो ञ्णिति ॥ ७० ॥ अ० ७ । २ । ११५ ॥

ञित् और णित् प्रत्यय परे हों, तो अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो।

---

१. ङि को औकार—(इदुद्भ्यामौत् ॥ ५ । ३ । ११७, ११८) इससे हुआ ॥

२. दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ॥ ६ । ४ । ८) नामिक—४६ ॥

जैसे—सखै = औ' अब ऐकार को 'आय्' आदेश होके—सखायौ । सखायः । सखायम् । सखायौ ।।

आगे 'पति' शब्द के समान—सखीन् । सख्या । सख्ये । सख्युः । सख्युः । सख्यौ इत्यादि ।।

मति शब्द को वेद में कुछ विशेष है—

४७५–षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ।। ७१ ।। अ० १ । ४ । ९ ।।

षष्ठीयुक्त जो पति शब्द उसको घिसञ्ज्ञा वेद में विकल्प करके हो ।

जैसे—भूतानां पतये : नमः; भूतानां पतये नमः ।।

इकारान्त नियतनपुंसकलिङ्ग वारि शब्द—

'वारि+सु' इस अवस्था में—

४७६–स्वमोर्नपुंसकात् ।। ७२ ।। अ० ७ । १ । २३ ।।

जो नपुंसकलिङ्ग से परे सु और अम् हों तो उनका लोप हो ।

वारि ।।

'वारि+औ' यहां (नपुंसकाच्च ।। ७ । १ । १९) इस (ना० ४२) सूत्र से औकार के स्थान में 'शी' आदेश और शकार की इत्सञ्ज्ञा होके—'वारि+ई' इस अवस्था में—

४७७–इकोऽचि विभक्तौ ।। ७३ ।। अ० ७ । १ । ७३ ।।

जो अजादि विभक्ति परे हो, तो इगन्त नपुंसक अङ्ग को नुम् का आगम हो ।

नुम् होके—वारिणी । 'वारि+जस' यहां शि[1] आदेश और दीर्घ[2] हो के—वारिणि ।।

फिर भी द्वितीयाविभक्ति में—वारि । वारिणी । वारीणि ।।

वारिणा । वारिभ्याम् । वारिभिः । वारिणे । वारिभ्याम् । वारिभ्यः । वारिणः । वारिभ्याम् । वारिभ्यः । वारिणः । वारिणोः ।

'वारि+आम्' यहां नुट् और नुम् दोनों की प्राप्ति में पूर्वविप्रतिषेध से नुट्[3] होता है । यदि नुम् हो तो पूर्वान्त होने से दीर्घ न हो—वारीणाम् । वारिणि । वारिणोः । वारिषु[4] ।

इसके सम्बोधन में प्रयोग नहीं बनते, क्योंकि 'वारि' शब्द से जल का ग्रहण होता है । उसके जड़ होने से सम्बोधन नहीं बन सकता ।।

---

१. 'शि' आदेश—(जश्शसोः शिः ।। ७ । १ । २०) नामिक—४३ ।।

२. दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ।। ६ । ४ । ८) नामिक—४६ ।।

३. नुम् (इकोऽचि विभक्तौ ।। ७ । १ । ७३) इससे प्राप्त हुआ, तथा (ह्रस्वनद्यापो नुट् ।। ७ । १ । ५४) नामिक—३४ इससे नुट् प्राप्त हुआ । इन दोनों की युगपत् प्राप्ति में (विप्रतिषेधे परं कार्य्यम् ।। १ । ४ । २) सन्धि०—११७ । इस परिभाषा से पर कार्य्य नुम् ही पाया उस नुम् को (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन) इस वार्त्तिक बल से बाध के पूर्व कार्य्य नुट् होता है ।।

४. वारि, वारिणी, वारीणि । वारि, वारिणी, वारीणि । वारिणा, वारिभ्याम् वारिभिः । वारिणे, वारिभ्याम् वारिभ्यः । वारिणः, वारिभ्याम्, वारिभ्यः । वारिणः वारिणोः वारीणाम् । वारिणि, वारिणो, वारिषु ।।

इसी प्रकार और भी सब नियतनपुंसकलिङ्ग-इकारान्त **अतिरि** आदि शब्दों का साधुत्व जानना चाहिये ।।

परन्तु—**अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि,** इन चार नपुंसकलिङ्ग इकारान्त शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं, उनको लिखते हैं—

अस्थि । अस्थिनी । अस्थीनि । फिर भी अस्थि । अस्थिनी । अस्थीनि ।

'अस्थि+टा' इस अवस्था में—

४७८–अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ।। ७४ ।।

अ० ७ । १ । ७५ ।।

तृतीयादि अजादि[1] विभक्तियाँ परे हों तो अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि शब्दों को अनङ् आदेश हो [और वह उदात्त हो] ।

जैसे—'अस्थनङ्+टा' इस अवस्था में अङ्, ट्, इनकी इत्सञ्ज्ञा हो के लोप हो गया । उक्त अजादि विभक्तियों में 'अस्थन्' इसकी भसञ्ज्ञा होके—

४७९–अल्लोपोऽनः ।। ७५ ।। अ० ६ । ४ । १३४ ।।

अन्नन्त भसञ्ज्ञक अङ्ग के [अन् के] अकार का लोप हो ।

इससे थकारोत्तर अकार का लोप हो गया । जैसे—'अस्थ्न्+आ' स्थ्, न् टा के आकार में मिल के—अस्थ्ना । अस्थ्ने । अस्थ्नः । अस्थ्नः । अस्थ्नोः । अस्थ्नाम् ।।

---

१. अजादि विभक्ति—टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस् ।

'अस्थन्+ङि'—

४८०–विभाषा ङिश्योः ॥ ७६ ॥ अ० ६ । ४ । १३६ ॥

ङि और शी विभक्ति परे हो तो भसञ्ज्ञक अन्नन्त अङ्ग के अकार का लोप विकल्प करके हो ।

अस्थ्नि; अस्थनि ॥[1]

अस्थ्नोः । हलादि विभक्तियों में 'वारि' शब्द के समान जानना चाहिये ।

'अस्थि' आदि शब्दों की व्यवस्था कुछ वेद में[2] विशेष है—

४८१–छन्दस्यपि दृश्यते ॥ ७७ ॥ अ० ७ । १ । ७६ ॥

वेद में भी अस्थि आदि शब्दों में उदात्त अनङ् आदेश देखने में आता है ।

यहां प्रयोजन यह है कि 'अनङ्' आदेश नियम से कहा है । उससे अन्यत्र भी देखने में आता है । जैसे—इन्द्रो दधीचो अस्थभिः[3] । भद्रं पश्येमाक्षभिः[4] । अस्थान्युत्कृत्य जुहोति, इत्यादि ॥

४८२–ई च द्विवचने ॥ ७८ ॥ अ० ७ । १ । ७७ ॥

द्विवचन विभक्ति परे हो तो अस्थि आदि शब्दों को उदात्त ईकार आदेश वेद में होता है ।

अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले । अस्थीभ्याम् । दधीभ्याम् ।

---

१. अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि । अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि । अस्थ्ना, अस्थिभ्याम्, अस्थिभिः । अस्थ्ने, अस्थिभ्याम् अस्थिभ्यः । अस्थ्नः, अस्थिभ्याम्, अस्थिभ्यः । अस्थ्नः, अस्थ्नोः, अस्थ्नाम् । अस्थ्नि; अस्थनि, अस्थ्नोः, अस्थिषु ॥

२. वेदे—अस्थी । अस्थानि । अस्थीभ्याम् । अस्थभिः, ईदृशान्यपि ॥

३. ऋ० १. ८४. १३ । ४. ऋ० १. ८९. ८ ।

सक्थीभ्याम् । अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्[×], इत्यादि ॥

इकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग वेदि शब्द—

वेदिः । वेदी । वेदयः । वेदिम् । वेदी । वेदीः । वेद्या । वेदिभ्याम् । वेदिभिः ॥

'वेदि+ङे' इस अवस्था में—

४८३–ङिति ह्रस्वश्च ॥ ७६ ॥ अ० १ । ४ । ६ ॥

स्त्रीलिङ्ग के वाचक ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द, और जिनके स्थान में इयङ् उवङ् होते हैं, ऐसे जो दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त शब्द हैं, उनकी नदी सञ्ज्ञा विकल्प करके हो ।

दूसरे पक्ष में ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्दों की 'घिसञ्ज्ञा' भी होती है । इस कारण 'वेदि' शब्द की 'नदी और घि' दोनों सञ्ज्ञा होती हैं । प्रथम नदी सञ्ज्ञा होकर—

४८४–आण्नद्याः ॥ ८० ॥ अ० ७ । ३ । ११२ ॥

नद्यन्त अङ्ग से परे ङित् विभक्ति को आट् का आगम हो ।

'वेदि+आट्+ङे' यण और वृद्धि एकादेश होके—वेद्यै; जिस पक्ष में नदी सञ्ज्ञा न हुई वहां घिसञ्ज्ञा होके—'वेदि+ङे' यहां अग्नि शब्द के समान गुण और अय् आदेश होके—वेदये ॥

वेदिभ्याम् । वेदिभ्यः; । 'वेदि+आट्+ङसि' ट्, ङ, इ इनकी इत्सञ्ज्ञा होके—वेद्याः घिसञ्ज्ञा पक्ष में—वेदेः । वेदिभ्याम् । वेदिभ्यः । 'वेदि+आट्+ङस्' पूर्ववत्—वेद्याः; वेदेः । वेद्योः । 'वेदि+आम्' यहां नुट्[१] होके—वेदीनाम् ॥

---

१. नुट्—(ह्रस्वनद्यापो नुट् ॥ ७ । ५४) नामिक—३४ ॥

× ऋ० १०. १६३. १ ॥

'वेदि+ङि' नदीसञ्ज्ञा में—'वेदि+आट्+आम्' = वेद्याम्; घिसञ्ज्ञा में—वेदौ। वेद्योः। वेदिषु[1]॥

इसी प्रकार—**श्रुति, स्मृति, बुद्धि, धृति, कृति, वापि, हानि, रुचि, भूमि और धूलि** आदि शब्दों का साधुत्व जानना चाहिये॥

अथ ईकारान्तविषयः॥

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग सेनानी शब्द—

'सेनानी+सु' उकार का लोप, रुत्व और विसर्जनीय होके—सेनानीः॥ 'सेनानी+औ'—

४८५—एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य॥ ८१॥

अ० ६।४।८२॥

जिससे धातु का अवयव संयोग पूर्व न हो ऐसा जो इवर्ण है; तदन्त अनेकाच् अङ्ग को अच् परे हो, तो यणादेश हो।

सेनान्यौ। सेनान्यः। सेनान्यम्। सेनान्यौ। सेनान्यः। सेनान्या॥

सेनानीभ्याम्। सेनानीभिः। सेनान्ये। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनान्यः। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्य.। सेनान्यः। सेनान्योः। सेनान्याम्। 'सेनानी+ङि' यहां नी से परे ङि को

---

१. वेदिः, वेदी, वेदयः। वेदिम्, वेदी, वेदीः। वेद्या, वेदिभ्याम्, वेदिभिः। वेद्यै; वेदये, वेदिभ्याम्, वेदिभ्यः। वेद्याः; वेदेः, वेदिभ्याम्, वेदिभ्यः। वेद्याः; वेदेः, वेद्योः, वेदीनाम्। वेद्याम्; वेदौ, वेद्योः। वेदिषु॥

आम्[1] आदेश होके—सेनान्याम् । सेनान्योः । सेनानीषु । सम्बोधन में यहां कुछ विशेष नहीं है—हे सेनानीः ! हे सेनान्यौ ! हे सेनान्यः !

इसी प्रकार—**ग्रामणी, अग्रणी, यज्ञनी, सुधी,** इत्यादि शब्दों के रूप भी जानना । परन्तु **'ग्रामणी'** शब्द में वेद में यह विशेष है कि—

४८६–श्रीग्रामण्योश्छन्दसि ।। ८२ ।। अ० ७ । १ । ५६ ।।

वेद में श्री और ग्रामणी शब्द से परे आम् हो तो, उसको नुट् आगम होता है । जैसे—श्रीणाम्[2] ग्रामणीनाम्[3] ।।

और—**सुधी** शब्द में यह विशेष है कि—'सुधी+सु'=सुधी[4] 'सुधी+औ'—

४८७–न भूसुधियोः ।। ८३ ।। अ० ६ । ४ । ८५ ।।

अजादि विभक्ति परे हो तो 'भू' और 'सुधी' शब्द को यणादेश न हो ।

---

१. (ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ।। ७ । ३ । ११६) नामिक—५४ ।।

२. श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् [ऋ० १०. ४५. ५.] । अपि तत्र सूतग्रामणीनाम् ।।

३. ग्रामणीः, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः । ग्रामण्यम्, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः । ग्रामण्या, ग्रामणीभ्याम् ग्रामणीभिः । ग्रामण्ये, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभ्यः । ग्रामण्यः, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभ्यः । ग्रामण्यः, ग्रामण्योः, ग्रामण्याम् । ग्रामण्याम्, ग्रामण्योः, ग्रामणीषु । हे ग्रामणीः ! हे ग्रामण्यौ ! हे ग्रामण्यः !

४. सुष्ठु ध्यायतीति सुधीः पण्डितः, सुष्ठु ध्यायति या, सुष्ठु धीर्यस्या वेति विग्रहे श्रीवत् ।।

यणादेश के निषेध होने से इयङ् उवङ् आदेश होते हैं—सुधियौ, सुधियः । सुधियम् सुधियौ, सुधियः । सुधिया । सुधिये । सुधियः । सुधियः, [सुधियोः], सुधियाम् । सुधियि, सुधियोः ॥

सुधीषु । सम्बोधन में यहां भी कुछ विशेष नहीं । 'भू' शब्द का साधुत्व आगे आवेगा ॥

'सुधी' और **'भू'** शब्द का वेद में यह विशेष है कि—

४८८—छन्दस्युभयथा ॥ ८४ ॥ अ० ६ । ४ । ८६ ॥

वैदिकप्रयोग विषय में अजादि विभक्ति परे हों तो 'भू' और **'सुधी'** शब्द को यणादेश विकल्प करके हो ।

सुध्यौ; सुधियौ । सुध्यः; सुधियः इत्यादि ॥

'सेनानी' आदि शब्द यदि स्त्रीलिङ्ग के विशेषण हों तो इनके प्रयोगों में कुछ विशेषता नहीं है, और नपुंसकलिङ्ग हों तो इनके प्रयोग 'वारि' शब्द के समान होते हैं, क्योंकि नपुंसकलिङ्ग में उक्त ह्रस्व इकारान्त हो जाते हैं ॥

अब जो शब्द नियतस्त्रीलिङ्ग ईकारान्त हैं, उनके विषय में लिखते हैं—

नियत ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग कुमारी शब्द—

'कुमारी+सु' यहां उकार की इत्सञ्ज्ञा और लोप तथा ङीबन्त से अपृक्त हल् सु का लोप[1] होकर—कुमारी ॥

'कुमारी+औ'—

---

१. (हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ॥ ६ । १ । ६८)
नामिक—५० ॥

४८९–दीर्घाज्जसि च ॥ ८५ ॥ अ० ६ । १ । १०४ ॥

दीर्घ से परे जस् वा इजादि विभक्ति हों तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश न हो ।

यहां 'कुमारी' दीर्घ ईकारान्त शब्द है, इससे पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध होकर यणादेश होता है । जैसे—कुमार्य्यौ । कुमार्यः ॥

दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों का जस् विभक्ति के परे वेद में यह विशेष है—

४९०–वा छन्दसि ॥ ८६ ॥ अ० ६ । १ । १०५ ॥

[वेद में] जो दीर्घ से परे जस् हो, तो उसको पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश विकल्प करके हो ।

जैसे कुमारीः; कुमार्य्यः । वधूः, वध्वः इत्यादि ॥

कुमारीम्, कुमार्य्यौ, कुमारीः । कुमार्य्या, कुमारीभ्याम्, कुमारीभिः ॥

'कुमारी+ङे' यहां—

४९१–यू स्त्र्याख्यौ नदी ॥ ८७ ॥ अ० १ । ४ । ३ ॥

जो [नियत] स्त्रीलिङ्ग के वाचक ईकारान्त [और ऊकारान्त] शब्द है; उनकी नदी सञ्ज्ञा हो ।

कुमार्य्यै[1] ॥

---

१. तदन्त मानकर (आण्नद्याः ॥ ७ । ३ । ११२) नामिक—८०, इससे 'आट्' आगम हो गया ॥

कुमारीभ्याम् कुमारीभ्यः । कुमार्याः । कुमारीभ्याम् कुमारीभ्यः । कुमार्याः, कुमार्योः, 'कुमारी+आम्' नुट्[1] होके—कुमारीणाम् । कुमार्य्याम् कुमार्य्योः, कुमारीषु ।।

सम्बोधन में अपृक्त हल् 'सु' का लोप होकर—

४९२–अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ।। ८८ ।। अ० ७ । ३ । १०७ ।।

सम्बुद्धि परे हो, तो अम्बार्थ और नदीसञ्ज्ञकों को ह्रस्वादेश हो ।

हे कुमारि[2] हे कुमार्य्यौ । हे कुमार्य्यः ।।

जो ईकारान्त ङीप्, ङीष्, ङीन् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं, उनको 'कुमारी' शब्द के तुल्य समझना चाहिए । जैसे—**नदी, सरस्वती, ब्राह्मणी, आसुरी, किशोरी, वधूटी, चिरण्टी, कर्त्री,** इत्यादि ।।

परन्तु ईकारान्त स्त्री शब्द के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं ।

'स्त्री+सु' पूर्ववत् कार्य होकर—स्त्री । 'स्त्री+औ' उस अवस्था में—

४९३–स्त्रियाः ।। ८९ ।। अ० ६ । ४ । ७९ ।।

जो अजादि प्रत्यय परे हो, तो स्त्री शब्द को इयङ् आदेश हो ।

स्त्रियौ, स्त्रियः ।।

---

१. (ह्रस्वनद्यापो नुट् ।। ७ । १ । ५४) नामिक—३४, इससे नुट् हो गया ।।

२. (प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ।। १ । १ । ६१) सन्धि०—१००, इस परिभाषा से प्रत्ययलक्षण मानकर ह्रस्व हुआ ।।

'स्त्रि+अम्' इस अवस्था में—

४९४–वाऽम्शसोः ॥ ९० ॥ अ० ६ । ४ । ८० ॥

अम् और शस् प्रत्यय परे हों तो स्त्री शब्द को इयङ् आदेश विकल्प करके हो।

स्त्रियम्; जिस पक्ष में इयङ् न हुआ, वहां पूर्वरूप एकादेश होकर—स्त्रीम्, स्त्रियौ, स्त्रियः; स्त्रीः ॥

स्त्रिया। 'स्त्री+ङे'—

४९५–नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ॥ ९१ ॥ अ० १ । ४ । ४ ॥

जिन स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों के स्थान में इयङ् उवङ् आदेश होते हैं, वे नदीसञ्ज्ञक न हों, परन्तु स्त्री शब्द तो नदीसञ्ज्ञक हो।

'स्त्री+आट्+ङे'=स्त्रियै। स्त्रियाः। स्त्रियाः, स्त्रियोः, स्त्रीणाम्। स्त्रियाम्, स्त्रियोः, स्त्रीषु।

सम्बोधन में नदीसञ्ज्ञा के होने से ह्रस्व[1] हो गया—हे स्त्रि! हे स्त्रियौ, हे स्त्रियः!

और जो ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग दूसरे प्रकार के हैं—**अवी, तरी, स्तरी, तन्त्री, ययी, पपी, लक्ष्मी, श्री,** ये भी 'कुमारी' शब्द के समान हैं, परन्तु इनसे परे सु अपृक्त हल् लोप नहीं होता, क्योंकि ये ङीप् ङीष् वा ङीन् प्रत्ययान्त शब्द नहीं हैं॥

और इन दूसरे प्रकार के शब्दों में एक **श्री** शब्द में कुछ विशेष है। जैसे—

१. ह्रस्व—(अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ॥ ७ । ३ । १०७) नामिक—८८ ॥

'श्री+सु' = श्रीः। 'श्री+औ'—

४९६–अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ॥ ९२ ॥

अ० ६। ४। ७७॥

जो अजादि प्रत्यय परे हों, तो श्नुप्रत्ययान्त, धातु और भ्रू शब्द इन के इवर्ण उवर्ण को इयङ् और उवङ् आदेश हों।

जैसे—श्रियौ[1], श्रियः। श्रियम्, श्रियौ, श्रियः। श्रिया। 'श्री+ङे' = श्रियै;[2] श्रिये। श्रियाः; श्रियः। श्रियाः; श्रियः। श्रियोः॥

'श्री+आम्' इन अवस्था में—

४९७–वाऽऽमि ॥ ९३ ॥ अ० १। ४। ५॥

इयङ् उवङ् स्थानी स्त्रीवाचक ईकारान्त ऊकारान्त शब्द, आम् विभक्ति परे हो तो विकल्प करके नदीसञ्ज्ञक हों ['स्त्री' शब्द को छोड़कर]।

नदीसञ्ज्ञापक्ष में—श्रीणाम्; अन्यत्र—श्रियाम्। वेद में—श्रीणाम्[3] यह एक ही प्रयोग होता है॥

'श्री+ङि' नदीसञ्ज्ञापक्ष में—श्रियाम्, अन्यत्र—श्रियि। श्रियोः, श्रीषु। हे श्रीः! हे श्रियौ! हे श्रियः!

---

१. क्विप् प्रत्ययान्त शब्द प्रातिपदिकसञ्ज्ञक होके भी धातुसञ्ज्ञा का त्याग नहीं करते हैं॥

२. (ङिति ह्रस्वश्च ॥ १। ४। ६) नामिक—७९, इस सूत्र से विकल्प करके नदी सञ्ज्ञा हो गई॥

३. श्रीग्रामण्योश्छन्दसि ॥ ७। १। ५६) नामिक—८२, इससे नित्य नुट् हो गया॥

अथ उकारान्तविषयः ॥

उकारान्त पुंल्लिङ्ग वायु शब्द—

वायुः । 'वायु+औ' पूर्वसवर्णदीर्घ होके—वायू । वायु+जस्' घिसञ्ज्ञा होने से गुण और (एचोऽयवायावः ॥ ६ । १ । ७८) सन्धि०—१७९ इस सूत्र से अवादेश होके—वायवः । 'वायु+अम्,' पूर्वरूप[1] एकादेश—वायुम् । वायू । 'वायु+शस्' पूर्वसवर्ण दीर्घ, और सकार को नकार[2] आदेश होकर—वायून् ॥

वायुना, वायुभ्याम्, वायुभिः । वायवे, वायुभ्याम्, वायुभ्यः । 'वायु+ङसि' गुण और पूर्वरूप[3] एकादेश होके—वायोः, वायुभ्याम् वायुभ्यः । वायोः, 'वायु+ओस्' यणादेश होके—वाय्वोः, वायूनाम् । 'वायु+ङि' ङि को औकार तथा उकार को अकार[4] होकर वृद्धि एकादेश हुआ—वायौ, वाय्वोः; वायुषु ॥

---

१. (अमि पूर्वः ॥ ६ । १ । १०६) नामिक—२२ ॥

२. सकार को नकारादेश—(तस्माच्छसो नः पुंसि ॥ ६ । १ । १०२) नामिक—२४ ॥

३. (ङसिङसोश्च ॥ ६ । १ । १०९) नामिक—६२ इससे पूर्वरूप हुआ ॥

४. ङि को औ, तथा उ को अ—(अच्च घेः ॥ ७ । ३ । ११९) नामिक—६३ ॥

सम्बोधन में—'वायु+स्' अपृक्तहल् लोप[1] और गुण[2] होकर—हे वायो ! हे वायू ! हे वायवः !

इसी प्रकार—**विभु, प्रभु, भानु, गुरु, शत्रु,** इत्यादि उकारान्त, पुँल्लिङ्ग शब्दों का साधुत्व समझना ।।

परन्तु उकारान्त **क्रोष्टु** शब्द में कुछ विशेष है—

४९८–तृज्वत्क्रोष्टुः ।। ९४ ।। अ० ७ । १ । ९५ ।।

जो सम्बुद्धिभिन्न 'सर्वनामस्थान' परे हो तो 'क्रोष्टु' शब्द तृच्[3] प्रत्ययान्तवत् हो ।

क्रोष्टु ऋकारान्त 'कर्तृ' शब्द के समान हो जाता है—क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः । क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ ।

यहां 'सम्बुद्धिभिन्न' इसलिये है कि—क्रोष्टो ! सर्वनाम—स्थान' इसलिये है कि—क्रोष्टून्, यहां तृज्वद्भाव न हुआ ।।

४९९–विभाषा तृतीयादिष्वचि ।। ९५ ।। अ० ७ । १ । ९७ ।।

तृतीयादि कजादि विभक्तियाँ परे हों तो, 'क्रोष्टु' शब्द को तृज्वद्भाव विकल्प करके हो ।

---

१. स् लोप—हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ।। ६ । १ । ६८ नामिक—५० ।।

२. गुण— ह्रस्वस्य गुणः ।। ७ । ३ । १०८ ।। नामिक—३४ ।।

३. यह तृज्वत् अतिदेश रूपातिदेश है, अर्थात् तृच् प्रत्ययान्त 'कृञ्' धातु का जो रूप है, उसका अतिदेश किया है ।।

क्रोष्ट्रा; क्रोष्टुना। 'क्रोष्टु+आम्' यहां नुट् और तृज्वद्भाव दोनों प्राप्त हुए, तो नुट्[1] हुआ ॥

उकारान्त नपुंसकलिङ्ग वस्तु शब्द—

'वस्तु+सु' सु का लुक् होके—वस्तु। द्विवचन में 'शी' आदेश, शकार की इत्सञ्ज्ञा और (नपुंसकस्य झलचः ॥ ७। १। ७२) इस (ना० ४५) सूत्र से नुमागम होके—वस्तुनी। 'वस्तु+जस्' [जस्] के स्थान में 'शि' आदेश और पूर्व को नुमागम—'वस्तु+नुम्+इ' ॥ वस्तूनि। ऐसे ही द्वितीया में ॥

'वस्तु+टा' घिसञ्ज्ञा[2] और उससे परे टा के स्थान में ना आदेश होकर—वस्तुना, वस्तुभ्याम्, वस्तुभिः। वस्तुने, वस्तुभ्याम्, वस्तुभ्यः। वस्तुनः, वस्तुभ्याम्, वस्तुभ्यः। वस्तुनः; वस्तुनोः, वस्तूनाम्। वस्तुनि, वस्तुनोः, वस्तुषु। **जड़भाव से सम्बोधन नहीं होता** ॥

इसी प्रकार—**श्मश्रु, जानु, स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, तालु,** [इत्यादि] नियतनपुंसकलिङ्ग शब्दों के प्रयोग भी जानना ॥

उकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग धेनु शब्द—

धेनुः, धेनू, धेनवः। धेनुम्, धेनू, धेनूः। 'धेनु+टा' टकार की इत्सञ्ज्ञा और यण होके—धेन्वा, **धेनुभ्याम्,**

---

१. तृज्वद्भाव परत्व से प्राप्त था, उसको बाध के पूर्वविप्रतिषेध से (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट्) इस वार्तिक बल से नुट् हुआ ॥

२. घिसञ्ज्ञा—(शेषो घ्यसखि ॥ १। ४। ७) नामिक—५९ ॥

३. टा को ना—(आङो नास्त्रियाम् ॥ ७। ३। १२०) नामिक—६० ॥

धेनुभिः। 'धेनु+ङे' यहां विकल्प करके नदी सञ्ज्ञा [1] और द्वितीय पक्ष में घिसञ्ज्ञा होने से दो-दो प्रयोग होते हैं। अर्थात्—धेन्वै; धेनवे[2], धेनेभ्याम्, धेनुभ्यः। धेन्वाः; धेनोः, धेनुभ्याम्, धेनुभ्यः। धेन्वाः; धेनोः, धेन्वोः, धेनूनाम्। धेन्वाम्; धेनौ, धेन्वोः, धेनुषु। सम्बोधन में गुण होके—हे धेनो! हे धेनू! हे धेनवः!

इसी प्रकार—**रज्जु, सरयु, कुहु, तनु, रेणु** इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी [जानने] चाहियें।

अथ ऊकारान्तविषयः ॥

दीर्घ ऊकारान्त शब्द तीन प्रकार के होते हैं—धात्वन्त, उणादिप्रत्ययान्त, और नियत स्त्रीवाचक ऊङ् प्रत्ययान्त। जैसे—धात्वन्त—परिभूः। उणादि प्रत्ययान्त—कर्षूः। नियत स्त्रीवाचक ऊङ् प्रत्ययान्त—ब्रह्मबन्धूः इत्यादि।

उनमें से धात्वन्त **परिभू** शब्द के प्रयोग पुँल्लिङ्ग में दिखलाते हैं।

'परिभू+सु=परिभुः। 'परिभू+औ' यहां उवङ्[3] आदेश होके—परिभुवौ। परिभुवः। परिभुवम्, परिभुवौ, परिभुवः।

---

१. नदीसञ्ज्ञा विकल्प—(ङिति ह्रस्वश्च ॥ १ । ४ । ६) नामिक—७९ ॥
२. (घेर्ङिति ॥ ७ । ३ । १११) नामिक—६१, इससे गुणादेश हो जाता है॥
३. उवङ्—(अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ॥ ६ । ४ । ७७) नामिक—९२ ॥

परिभुवा, परिभूभ्याम्, परिभूमिः । परिभुवे, परिभूभ्याम्, परिभूभ्यः । परिभुवः, परिभूभ्याम्, परिभूभ्यः । परिभुवः, परिभवोः, परिभुवाम् । परिभुवि, परिभुवोः, परिभूषु । यहाँ सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं ।।

वर्षाभू, दृन्भू, कारभू, पुनर्भू इन चार शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं—

वर्षाभूः । 'वर्षाभू+ग्रौ'—

५००—वर्षाभ्वश्च ।। ९६ ।। अ० ६ । ४ । ८४ ।।

आजादि सुप् विभक्तियाँ परे हों तो वर्षाभू शब्द के उकार को यणादेश हो ।

वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः । वर्षाभ्वम् वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः । वर्षाभ्वा, वर्षाभूभ्याम्, वर्षाभूमिः । वर्षाभ्वे, वर्षाभूभ्याम्, वर्षाभूभ्यः । वर्षाभ्वः, वर्षाभूभ्याम्, वर्षाभूभ्यः । वर्षाभ्वः, वर्षाभ्वोः, वर्षाभ्वाम् । वर्षाभ्वि, वर्षाभ्वोः, वर्षाभूषु । हे वर्षाभूः ! हे वर्षाभ्वौ ! हे वर्षाभ्वः !

दृन्भूः । 'दृन्भू+ग्रौ' इस ग्रवस्था में—

५०१—वा० दृन्कारपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्य ।। ९७ ।।
अ० ६ । ४ । ८४ ।।

अजादि सुप् विभक्तियाँ परे हों तो दृन्, कार, पुनर्, ये हैं पूर्व जिसके ऐसे भूशब्द के उकार को यणादेश हो ।

जैसे—दृन्भ्वौ, दृन्भ्वः । कारभूः, कारभ्वौ, कारभ्वः । पुनर्भूः, पुनर्भ्वौ, पुनर्भ्वः इत्यादि ।।

वेद में 'पुनर्भू' आदि शब्दों के प्रयोगों में उवङ् और यण्[1] दोनों आदेश होते हैं। जैसे—पुनर्भुवौ; पुनर्भ्वौ। पुनर्भुवः, पुनर्भ्वः। पुनर्भुवम्; पुनर्भ्वम् इत्यादि ॥

उक्त ऊकारान्त शब्द विशेष्य लिङ्ग के आश्रय से तीनों लिङ्गों में हो सकते हैं। ऊकारान्त अनियत स्त्रीवाचकों को स्त्रीलिङ्ग में कुछ विशेष कार्य्य नहीं होते हैं। यदि वे नपुंसकलिङ्ग में आवे तो उनको ह्रस्वादेश[2] होकर वे प्रयोग विषय में 'वस्तु' शब्द के समान हो जाते हैं ॥

और उणादिप्रत्ययान्त कर्षू इत्यादिकों में यदि कोई पुँल्लिङ्ग[3] समझा जावे तो उसके प्रयोग 'परिभू' शब्द के समान समझना चाहिए।

नियतस्त्रीलिङ्ग ऊङ् प्रत्ययान्त ब्रह्मबन्धू शब्द

ब्रह्मबन्धूः। 'ब्रह्मबन्धू+औ' यहां यण् होके—ब्रह्मबन्ध्वौ। ब्रह्मबन्ध्वः। 'ब्रह्मबन्धू+अम्' यहां पूर्वरूप[4] एकादेश होके—ब्रह्मबन्धूम्, ब्रह्मबन्ध्वौ, ब्रह्मबन्धूः। ब्रह्मबन्ध्वा, ब्रह्मबन्धूभ्याम्, ब्रह्मबन्धूभिः। ङित् वचनों में नदीसञ्ज्ञादि कार्य[5] होकर—

---

१. यण् उवङ्—(छन्दस्युभयथा ॥ ६। ४। ८६) नामिक—८४ ॥

२. ह्रस्व—(ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ १। २। ४७) नामिक—४९ ॥

३. 'कर्षू' करीषाग्नि में पुँल्लिङ्ग और नदी अर्थ में स्त्रीलिङ्ग है ॥

४. पूर्वरूप—(अमि पूर्वः ॥ ६। १। १०६) नामिक—२२ ॥

५. नदीसञ्ज्ञा—(यू स्त्र्याख्यौ नदी ॥ १। ४। ३) नामिक—८७, तथा नद्यन्त को मानकर आट् इत्यादि कार्य होते हैं ॥

ब्रह्मबन्ध्वै, ब्रह्मबन्धूभ्याम्, ब्रह्मबन्धूभ्यः। ब्रह्मबन्ध्वाः; ब्रह्मबन्धूभ्याम्, ब्रह्मबन्धूभ्यः। ब्रह्मबन्ध्वाः, ब्रह्मबन्ध्वोः, ब्रह्मबन्धूनाम्। ब्रह्मबन्ध्वाम्, ब्रह्मबन्ध्वोः, ब्रह्मबन्धूषु। सम्बुद्धि में ह्रस्व[1] होकर—हे ब्रह्मबन्धु! हे ब्रह्मबन्ध्वौ! हे ब्रह्मबन्ध्वः!

इसी प्रकार—**वधू, चमू, श्मश्रू, संहितोरू, वामोरू, कमण्डलू, गुग्गुलू, दद्रू** इत्यादि ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें॥

अथ ऋकारान्तविषयः॥

ऋकारान्त नियतपुँल्लिङ्ग पितृ शब्द—

ऋकारान्त शब्द दो प्रकार[2] के होते हैं। अर्थात् एक वे जिनको सर्वनामस्थान में दीर्घ होता है, और दूसरों को नहीं

---

१. ह्रस्व—(अम्बार्थनद्योर्ह्रस्व॥ ७। ३। १०७) नामिक—८८॥

२. दीर्घादेश प्रकरण के (अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्॥ अ० ६। ४। ११) इस सूत्र में 'नप्तृ' आदि शब्दों का **ग्रहण** अव्युत्पत्ति पक्ष में दीर्घादेश विधान के लिये और व्युत्पत्ति पक्ष **में तो** नियम के लिये है कि जो उणादि तृन्तृजन्त शब्दों को दीर्घादेश **हो तो** नप्त्रादिकों को ही हो। इससे—पितृ, भ्रातृ, जामातृ इत्यादि शब्दों **को** सर्वनामस्थान के परे दीर्घादेश नहीं होता और अष्टाध्यायीस्थ कर्तृ, स्तोतृ, आदि शब्दों को होता है। जैसे कर्त्ता। कर्त्तारौ। स्तोता। स्तोतारौ, इत्यादि॥

होता। वे दोनों प्रकार के शब्द लिङ्गभेद से तीनों लिङ्गों में आते हैं ॥

पितृ आदि शब्दों को सर्वनामस्थान के परे दीर्घादेश नहीं होता। जैसे—पिता। 'पितृ+सु'—

५०२—ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ॥ ६८ ॥

अ० ७। १। ९४ ॥

ऋकारान्त, उशनस्, पुरुदंशस् और अनेहस् शब्दों को सम्बुद्धिभिन्न सु विभक्ति परे हो तो अनङ् आदेश हो।

अनङ् होके—'पित्+अनङ्+सु' अकार ङकार की इत्सञ्ज्ञा और तकार अकार में मिल के—पितन्+सु' यहां नान्त अङ्ग को दीर्घ[1] और नकार का लोप[2] होके पिता ॥

'पितृ+औ'

५०३—ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ॥ ६९ ॥

अ० ७। ३। ११० ॥

ङि और सर्वनामस्थान परे हो, तो ऋकारान्त अङ्ग को गुणादेश हो।

ऋकार के स्थान में 'अर्' गुण होके—पितरौ, पितरः। पितरम्, पितरौ ॥

---

१. नान्त अङ्ग को दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ॥ ६। ४। ८) नामिक—४६ ॥

२. नलोपः—(नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ८। २। ७) नामिक—६८ ॥

'पितृ+शस्' यहां शकार की इत्सञ्ज्ञा, पूर्वसवर्णदीर्घ[1] एकादेश और सकार को नकारादेश होके—पितॄन् । 'पितृ+टा' टकार की इत्सञ्ज्ञा ऋ के स्थान में र्[2] आदेश होके—पित्रा । पितृभ्याम् । पितृभिः । पित्रे । पितृभ्याम् । पितृभ्यः ।।

'पितृ+ङसि' यहां—

५०४—ऋत उत् ।। १०० ।। अ० ६ । १ । ११० ।।

जो ऋकारान्त से परे ङसि, ङस् सम्बन्धी अकार हो तो पूर्व पर के स्थान में उकार एकादेश हो ।

फिर उकार रपर[3] हुआ । जैसे—पितुर्स् ।

५०५—रात्सस्य ।। १०१ ।। अ० ८ । २ । २४।।

रेफ से परे संयोगान्त सकार का ही लोप हो ।

सकार का लोप और रेफ को विसर्जनीय होके—पितुः ।।

पितृभ्याम्, पितृभ्यः । पितुः, पित्रोः ।।

'पितृ+आम्' यहाँ नुट्[4] और दीर्घ[5] होके—

५०६—वा०—रषाभ्यां णत्वे ऋकारग्रहणम् ।। १०२ ।।
अ० ८ । ४ । १ ।।

---

१. पूर्वसवर्ण दीर्घ—(प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ।। ६ । १ । १०१) नामिक—२१ ।।
२. र्—(इको यणचि ।। ६ । १ । ७७) सन्धि०—१७८ ।।
३. रपर—(उरण् रपरः ।। १ । १ । ५०) सन्धि०—८७ ।।
४. नुट्—(ह्रस्वनद्यापो नुट् ।। ७ । १ । ५४) नामिक—३४ ।।
५. दीर्घ—(नामि ।। ६ । ४ । ३) नामिक—३५ ।।

र, ष से परे णत्व विधान में ऋकार ग्रहण करना चाहिये, अर्थात् एक पद में ऋकार से परे भी नकार के स्थान में णकारादेश हो ।

जैसे—पितृणाम् ।।

'पितृ+ङि' गुण[1] और रपर होके—पितरि, पित्रोः, पितृषु । सम्बोधन में सम्बुद्धिगुण[2] होके—हे पितः ! हे पितरौ ! हे पितरः[3] !

इसी प्रकार—भ्रातृ, जामातृ इत्यादि सञ्ज्ञाशब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

परन्तु नृ शब्द को आम् विभक्ति के परे जो कुछ विशेष होता है, सो लिखते हैं—

५०७–नृ च ।। १०३ ।। अ० ६ । ४ । ६ ।।

नुट्सहित आम् विभक्ति परे हो तो नृ शब्द के ऋकार को विकल्प करके दीर्घ हो ।

जैसे—नृणाम्, नृणाम् ।।

सम्बोधन में—हे नः ! हे नरौ ! हे नरः !

---

१. गुण-(ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ।। ७ । ३ । ११०) नामिक—९९ ।।

२. सम्बुद्धिगुण—(ह्रस्वस्य गुणः ।। ७ । ३ । १०८) नामिक—६४ ।।

३. पिता, पितरौ, पितरः । पितरम्, पितरौ, पितॄन् । पित्रा, पितृभ्याम्, पितृभिः । पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभ्यः । पितुः, पितृभ्याम्, पितृभ्यः । पितुः, पित्रोः, पितृणाम् । पितरि, पित्रोः, पितृषु । हे पितः, हे पितरौ हे पितरः ।।

दूसरे[1] प्रकार के ऋकारान्त शब्दों में ऋकारान्त पुँल्लिङ्ग **होतृ** शब्द—

'होतृ+सु' पूर्ववत् प्रातिपदिकसञ्ज्ञादि तथा अनङादेशादि कार्य्य होकर—होता ॥

'होतृ+औ' यहां गुण होके—'होतर्+औ'—

५०८—अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ॥
॥ १०४ ॥ अ० ६ । ४ । ११ ॥

जो सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो अप् शब्द, तृन्, तृच् प्रत्ययान्त और स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ इन शब्दों [की उपधा] को दीर्घादेश हो ।

जैसे—होतारौ, होतारः । होतारम्, होतारौ । शेष **प्रयोग** 'पितृ' शब्द के समान समझना ॥

इसी प्रकार—**कर्त्तृ**, **हर्त्तृ** आदि तथा **नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, पोतृ, प्रशास्तृ** शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहियें ॥

ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग कर्त्तृ शब्द—

'कर्त्तृ+सु' यहां सु विभक्ति का लुक्[2] होके—कर्त्तृ । 'कर्त्तृ+औ' औकार के स्थान में शी[3] आदेश और पूर्व को नुम्[4]

---

१. दूसरे अर्थात् जिनको सर्वनामस्थान के परे दीर्घादेश होता है ।

२. सु लुक्—(स्वमोर्नपुंसकात् ॥ ७ । १ । २३) नामिक—७२ ॥

३. औ को शी—(नपुंसकाच्च ॥ ७ । १ । १९) नामिक—४२ ॥

४. पूर्व को नुम्—(नपुंसकस्य झलचः ॥ ७ । १ । ७२) नामिक—४५ ॥

होके—कर्त्तृणी । 'कर्त्तृ+जस्' यहां शि[1] आदेश नुम् और दीर्घ[2] होके—कर्त्तृणि । द्वितीया विभक्ति में भी कर्त्तृ । कर्त्तृणी । कर्त्तृणि ।।

'कर्त्तृ+टा' यहां से लेकर अजादि विभक्तियों में नुम्[3] होवेगा—कर्त्तृणा, कर्त्तृभ्याम्, कर्त्तृभिः । कर्त्तृणे, कर्त्तृभ्याम्, कर्त्तृभ्यः । कर्त्तृणः, कर्त्तृभ्याम्, कर्त्तृभ्यः । कर्त्तृणः, कर्त्तृणोः, कर्त्तृणाम् । 'कर्त्तृ+ङि' यहां गुण[4] होके—कर्त्तरि, कर्त्तृणोः, कर्त्तृषु । सम्बोधन में—हे कर्त्तः;[5] हे कर्त्तृ ! हे कर्त्तृणी ! हे कर्त्तृणि !

इसी प्रकार और भी ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

---

१. जस् को शि—(जश्शसोः शिः ।। ७ । १ । २०) नामिक—४३ ।।

२. पूर्व को दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ।। ६ । ४ । ८) नामिक—४६ ।।

३. अजादि विभक्ति में नुम्—(इकोऽचि विभक्तौ ।। ७ । १ । ७३) नामिक—७३ ।।

४. गुण—(ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ।। ७ । ३ । ११०) नामिक—९९ ।।

५. यहां (न लुमताङ्गस्य ।। १ । १ । ६३) सन्धि०—१०१ इस परिभाषा के अनित्य पक्ष में (ह्रस्वस्य गुणः ।। ७ । ३ । १०८) नामिक—६४ इससे गुण हो जाता है । उक्त परिभाषा का अनित्य पक्ष (इकोऽचि विभक्तौ ।। ७ । १ ।७३) इसकी व्याख्या में महाभाष्यकार ने कहा है [महा० अ० ७ पा० १ आ० २] ।।

परन्तु जो ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग में केवल **स्वसृ, दुहितृ, ननान्दृ, यातृ, मातृ, तिसृ, चतसृ,** ये सात शब्द हैं, इनके रूप कुछ भिन्न होते हैं ॥

नियत–ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग दुहितृ शब्द–

'दुहितृ+सु'=दुहिता, दुहितरौ, दुहितरः । दुहितरम् । दुहितरौ, दुहितॄः यहां पुँल्लिङ्ग के न होने से 'शस्' के सकार को नकार न हुआ । दुहित्रा, दुहितृभ्याम् दुहितृभिः । आगे 'पितृ' शब्द के समान समझना चाहिये ।

तिसृ, चतसृ शब्द में विशेष यह है कि—

५०६–त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ॥ १०५ ॥

अ० ७ । २ । ९९ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान त्रि और चतुर् शब्द हों, तो उनको तिसृ और चतसृ आदेश हों ।

५१०–अचि र ऋतः ॥ १०६ ॥ अ० ७ । २ । १०० ॥

जो अजादि विभक्ति परे हों, तो तिसृ और चतसृ शब्द के ऋकार को रेफ आदेश हों ।

'तिसृ+जस्'=तिस्रः । शस् में भी ऐसा ही होता है ॥

५११–न तिसृचतसृ ॥ १०७ ॥ अ० ६ । ४ । ४ ॥

तिसृ और चतसृ शब्दों को, नुट् सहित आम् विभक्ति परे हो, तो दीर्घ न हो ।

तिसृणाम् । चतसृणाम् ॥

५१२–छन्दस्युभयथा ।। १०८ ।। अ० ६ । ४ । ५ ।।

वैदिक प्रयोगों में नुट्सहित आम् विभक्ति परे हो, तो तिसृ, चतसृ, शब्दों को विकल्प करके दीर्घ होवे ।

तिसृणाम्; तिसॄणाम् । चतसृणाम्; चतसॄणाम् ।।

इसी प्रकार इन छः शब्दों के अन्य प्रयोग ऋकारान्तवत् समझने चाहियें ।।

परन्तु **स्वसृ**, शब्द को सर्वनामस्थान में 'होतृ' शब्द के समान दीर्घ होता है—स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः । स्वसारम्, स्वसारौ ।।

अथ ऐकारान्तविषयः ।।

ऐकारान्त पुंल्लिङ्ग रै शब्द–

'रै+सु'—

५१३–रायो हलि ।। १०९ ।। अ० ७ । २ । ८५ ।।

हलादि विभक्तियाँ परे हों, तो 'रै' शब्द को आकारादेश हो ।

जैसे—'रा+सु' उकार को इत्सञ्ज्ञा और लोप तथा सकार को रुत्व और विसर्जनीय होके—राः ।।

'रै+औ' अजादि विभक्तियों के परे सर्वत्र ऐकार के स्थान में—आय्[1] आदेश हो जाता है—रायौ, रायः । रायम्, रायौ, रायः । राया ।।

'रै+भ्याम्' इत्यादि में भी हलादि विभक्तियों के होने से

१. (एचोऽयवायावः ।। ६ । १ । ७८) सन्धि०—१७९ इस सूत्र से ।।

आकारादेश हो जाता है—राभ्याम्, राभिः । राये, राभ्याम् राभ्यः । रायः, राभ्याम्, राभ्यः । रायः, रायोः, रायाम् । रायि, रायोः, रासु । यहां 'रै' शब्द धन का वाचक है, इसलिए सम्बोधन नहीं होता ॥

जो अन्य कोई 'ऐकारान्त' शब्द आवे, तो उसके भी प्रयोग इसी प्रकार समझने चाहियें ॥

अथ ओकारान्तविषयः ॥

ओकारान्त पुंल्लिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग गो शब्द—

परन्तु इसके दोनों लिङ्गों में एक से ही प्रयोग होते हैं । 'गो+सु'—

५१४—गोतो णित् ॥ ११० ॥ अ० ७ । १ । ९० ॥

गो शब्द से परे जो सर्वनामस्थान विभक्ति हों, वे णित् के समान हो जावें ।

सर्वनामस्थान को णित्वत् होने से, वृद्धि हो जाती है । यहाँ भी 'गो' शब्द को वृद्धि[1] होके—गौः, गावौ, गावः ॥

'गो+अम्'—

५१५—औतोऽम्शसोः ॥ १११ ॥ अ० ६ । १ । ९३ ॥

जो अम् और शस् विभक्ति परे हों, तो ओकारान्त शब्द के ओकार को आकारादेश हो ।

जैसे—'गा+आम्' पूर्वरूप एकादेश होकर—गाम् ॥

गावौ, गाः । टा विभक्ति के परे अवादेश होके—गवा ।

१. वृद्धि—(अचोञ्णिति ॥ ७ । २ । ११५) इस सूत्र से ॥

गोभ्याम् गोभिः । गवे, गोभ्याम्, गोभ्यः । 'गो+ङसि' यहां पूर्वरूप[1]—एकादेश होके—गोः, गोभ्याम्, गोभ्यः । गोः, गवोः, गवाम् । गवि, गवोः, गोषु । जो किसी अर्थ में इस शब्द का सम्बोधन आवे तो कुछ विशेष न होगा ।।

अथ औकारान्तविषयः ।।

औकारान्त स्त्रीलिङ्ग नौ शब्द–

'नौ+सु' = नौः । 'नौ+औ' = नावौ, नावः । नावम्, नावौ, नावः । नावा, नौभ्याम्, नौभिः । नावे, नौभ्याम्, नौभ्यः । नावः, नौभ्याम्, नौभ्यः । नावः, नावोः, नावाम् । नावि, नावोः, नौषु ।।

इसी प्रकार—औकारान्त पुँल्लिग **ग्लौ** शब्द समझना—

ग्लौः, ग्लावौ, ग्लावः इत्यादि ।।

---

१. पूर्वरूप—(**ङसिङसोश्च** ।। ६ । १ । १०९) **नामिक**—६२ ।।

[अथ हलन्तप्रकरणम्]

अब जो-जो प्रसिद्ध हलन्त शब्द वेदादि ग्रन्थों में आते हैं, उनकी प्रयोगव्यवस्था दिखाई जाती है—

अथ चकारान्तविषयः ॥

चकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाच्[1] शब्द—

'वाच्+सु' यहां चकार के स्थान में ककार[2] [और उसके स्थान में गकार[3]] होके [वाग्]—

५१६—वावसाने ॥ ११२ ॥ अ० ८ । ४ । ५५ ॥

जो अवसान में वर्त्तमान झल् हों, तो उनको विकल्प करके चर् हो ।

जैसे—वाक्; वाग् ॥

वाचौ, वाचः । वाचम्, वाचौ, वाचः । वाचा, 'वाच्+भ्याम्, यहाँ भी चकार को ककारादेश होके—'वाक्+भ्याम्' इस अवस्था में—जश् आदेश होकर—वाग्भ्याम्, वाग्भिः । वाचे, वाग्भ्याम्, वाग्भ्यः । वाचः, वाग्भ्याम् वाग्भ्यः । वाचः, वाचोः, वाचाम् । वाचि, वाचोः, 'वाक्+सु' यहाँ ककार से परे सु के सकार को ष् आदेश होके—'वाक्षु' ॥

सङ्केत में कह चुके हैं कि 'वाच्' शब्द वाणी का वाची है, इसलिये जड़भाव होने से यह सम्बोधन में नहीं आता ॥

---

१. यह वाणी का नाम है ॥

२. च् को क्—(चोः कुः ॥ ८ । २ । ३०) सन्धि०—१८८ ॥

३. यहां (झलां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३९) सन्धि—१८९ ॥
इस सूत्र से जश् आदेश होता है ॥

इसी प्रकार—**शुच्, त्वच्, स्रुच** इत्यादि शब्दों के रूप भी समझने चाहियें ।।

जो चकारान्त शब्दों में निम्नलिखित शब्द हैं, जैसे—**प्राच्, प्रत्यच्, उदच्, अर्वाच्, दध्यच्, मध्वच्, क्रुञ्च** इत्यादि क्विन्प्रत्ययान्त शब्दों को पदान्त में सर्वत्र कुत्व हो जाता है ।

'प्राच्+सु' यहां—

५१७–उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ।। ११३ ।।

अ० ७ । १ । ७० ।।

जो सर्वनामस्थान परे हो, तो धातुरहित उगित् प्रातिपदिक और अञ्चु को नुम् का आगम हो ।

'प्रान्च्+सु' इस अवस्था में (हल्ङ्या० ।। ६ । १ । ६८) इस (ना०—५०) सूत्र से लोप होकर—

५१८–संयोगान्तस्य लोपः ।। ११४ ।। अ० ८ । २ । २३ ।।

संयोगान्त पद के अन्त्य वर्ण का लोप हो ।

इससे चकार का लोप होके—

५१९–क्विन्प्रत्ययस्य कुः ।। ११५ ।। अ० ८ । २ । ६२ ।।

क्विन् प्रत्यय जिससे कहा हो, उसको पदान्त में कवर्गादेश[१] हो ।

---

१. (क्विनः कुरिति सिध्येत प्रत्ययग्रहणं कृतम् । क्विन्प्रत्ययस्य सर्वत्र पदान्ते कुत्वमिष्यते । महाभाष्य ८ । २ । ६२) इसी सूत्र पर है । यहाँ प्रत्यय ग्रहण का यही प्रयोजन है कि जिस-जिस धातु से क्विन् प्रत्यय का विधान किया हो, उस-उस को पदान्त में कवर्गादेश हो जाय ।।

इससे नकार को अनुनासिक 'ङ्' आदेश हो जाता है, जैसे—प्राङ्, प्रत्यङ् इत्यादि ॥

'प्रान्च्+औ' यहां नकार को अनुस्वार[1] और अनुस्वार को परसवर्ण[2] होके—प्राञ्चौ, प्राञ्चः । प्राञ्चम्, प्राञ्चौ ॥

'प्र+अच्+शस्' इत्यादि सर्वनामस्थान भिन्न विभक्तियाँ परे रहने पर भसञ्ज्ञा होकर—

५२०—अचः ॥ ११६ ॥ अ० ६ । ४ । १३८ ॥

भसञ्ज्ञक अञ्चु धातु के अकार का लोप हो ।

जैसे—'प्र+च्+शस् यहां—

५२१—चौ ॥ ११७ ॥ अ० ६ । ४ । १३८ ॥

चु शब्दमात्र अञ्चु[3] धातु परे हो, तो पूर्व को दीर्घ हो ।

इससे प्र शब्द को दीर्घ होके—प्राचः । प्राचा ॥

'प्राच्+भ्याम्' यहाँ चकार को क्[4] और ककार को ग्[5] होके—प्राग्भ्याम्, प्राग्भिः । प्राचे, प्राग्भ्याम्, प्राग्भ्यः । प्राचः, प्राग्भ्याम्, प्राग्भ्यः । प्राचः, प्राचोः, प्राचाम् । प्राचि । प्राचोः, प्राक्षु ॥

---

१. न् को अनुस्वार—(नश्चापदान्तस्य झलि ॥ ८ । ३ । २४) सन्धि०—१९१ ॥

२. अनुस्वार को परसवर्ण—(अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ॥ ८ । ४ । ५७) सन्धि०—१९६ ॥

३. 'चु' इससे उस अञ्चु धातु का ग्रहण है कि जिसके अकार नकार का लोप हो जाता है ॥

४. च् को क्—(चोः कुः ॥ ८ । २ । ३०) सन्धि०—१८८ ॥

५. क् को ग्—(झलां जश् झशि ॥ ८ । ४ । ५२) सन्धि०—२३३ ॥

इसी प्रकार—प्रत्यङ्, प्रत्यञ्चौ, प्रत्यञ्चः । प्रत्यञ्चम्, प्रत्यञ्चौ, प्रतीचः, [यहाँ 'चौ' इससे दीर्घादेश होता है] इत्यादि सब चकारान्त शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें । परन्तु उक्त शब्दों में 'उदच्' और 'क्रुञ्च्'[1] के रूप सर्वनामस्थान भिन्न अजादि विभक्तियों में कुछ विशेष होते हैं—

५२२–उद ईत् ।। ११८ ।। अ० ६ । ३ । १३९ ।।

उद् उपसर्ग से परे भसञ्ज्ञक अञ्चु धातु के अकार को ईकार आदेश हो ।

उदीचः । उदीचा । उदीचे । उदीचः । उदीचः, उदीचोः, उदीचाम् । उदीचि, उदीचोः, उदक्षु ।।

(ऋत्विग्दधृक्० ।। ३ । २ । ५९) इस सूत्र में निपातन होने से 'क्रुञ्च्' शब्द की उपधा के नकार का लोप नहीं होता । क्रुङ् ।

सर्वनामस्थान में 'क्रुञ्च्' शब्द 'प्राच्' शब्द के तुल्य है— क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः । क्रुञ्चम्, क्रुञ्चौ, 'क्रुञ्च+शस्' यहाँ भी कुछ विशेष नहीं—क्रुञ्चः । क्रुञ्चा । 'क्रुञ्च्+भ्याम्' यहां च् को क् और अनुस्वार को परसवर्ण ङकार ही के ककार का लोप[2] हो जाता है—क्रुङ्भ्याम्, क्रुङ्भिः । क्रुञ्चे, क्रुङ्भ्याम्, क्रुङ्भ्यः ।

---

१. 'क्रुञ्च्' यहां धात्ववयव अपदान्त नकार के अनुस्वार को परसवर्ण हो जाता है ।।

२. क् का लोप—(संयोगान्तस्य लोपः । ८ । २ । २३) नामिक—११४ ।।

अथ छकारान्तविषयः ॥

छकारान्त स्त्रीलिङ्ग वा पुँल्लिङ्ग प्राछ्[1] शब्द–

'प्राछ्+सु' यहां–

५२३–व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥ ११९ ॥

अ० ८ । २ । ३६ ॥

झल् परे हो वा पदान्त में व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज, इन को तथा छकारान्त और शकारान्त शब्दों को षकारादेश हो ।

जैसे—'प्राष्+सु' यहां ष् के स्थान में ड्[2] होके—'प्राड्+सु' सु का लोप और ड् के स्थान में विकल्प से चर्[3] होके—प्राट्; प्राड्, दो प्रयोग होते हैं ॥

'प्राछ्+औ' यहां दीर्घ से परे छकार को तुगागम[4] होकर तकार को चकार[5] हो जाता है—प्राच्छौ, प्राच्छः । प्राच्छम्, प्राच्छौ, प्राच्छः । प्राच्छा । 'प्राछ्+भ्याम्' यहां पूर्ववत् छकार को ष् और ष् के स्थान में ड् होके—प्राड्भ्याम् । प्राड्भिः ।

---

१. यह पूछने वाले वा [पूछने] वाली का नाम है ॥

२. ष् को ड्—(झलां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३९) सन्धि—१८९ ॥

३. ड् को विकल्प चर्—(वावसाने ॥ ८ । ४ । ५५) नामिक—११२ ॥

४. तुक्—(दीर्घात् ॥ ६ । १ । ७५) सन्धि०—२०९ ॥

५. त् को च्—(स्तोः श्चुना श्चुः ॥ ८ । ४ । ३९ ॥ सन्धि०—२१२ ॥

प्राच्छे, प्राड्भ्याम्, प्राड्भ्यः। प्राच्छः, प्राड्भ्याम्, प्राड्भ्यः। प्राच्छः, प्राच्छोः, प्राच्छाम्। प्राच्छि, प्राच्छोः ।।

'प्राड्+सु' यहाँ डकार को टकार[1] होके—प्राट्सु। डकार से परे सकार को धुट्[2] का आगम भी विकल्प करके होता है। जैसे—प्राट्त्सु; प्राट्सु। सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं है ।।

अथ जकारान्तविषयः ।।

जकारान्त पुंल्लिङ्ग ऋत्विज्[3] शब्द–

'ऋत्विज्+सु' यह शब्द क्विन्प्रत्ययान्त है, इस कारण इसको पदान्त में कवर्गादेश[4] हो जाता है। इस कवर्ग को विकल्प करके चर् और दूसरे पक्ष में जश् होके—ऋत्विक्; ऋत्विग् ।।

ऋत्विजौ, ऋत्विजः। ऋत्विजम् ऋत्विजौ, ऋत्विजः। ऋत्विजा, ऋत्विग्भ्याम्, ऋत्विग्भिः। ऋत्विजे, ऋत्विग्भ्याम्, ऋत्विग्भ्यः। ऋत्विजः, ऋत्विग्भ्याम्, ऋत्विग्भ्यः। ऋत्विजः, ऋत्विजोः, ऋत्विजाम्। ऋत्विजि, ऋत्विजोः।

'ऋत्विज्+सु' यहां कुत्व होने से जकार को ग् आदेश

---

१. ड् को ट्—(खरि च ।। ८।४।५४) सन्धि०—२३४ ।।

२. धुट्—डः सि धुट् ।। ८।३।२९) सन्धि०—२०० ।।

३. 'ऋत्विज्' उसको कहते हैं जो ऋतु-ऋतु में यज्ञ करे वा करावे ।।

४. पदान्त में कुत्व—(क्विन्प्रत्ययस्य कुः ।। ८।२।६२) नामिक—११५ ।।

होकर ग् को क्[1] और सु के स् को ष्[2] आदेश हो जाता है। जैसे—ऋत्विक्षु। सम्बोधन में यहां कुछ विशेष नहीं है॥

इसी प्रकार—**उष्णिज्, भुरिज्**[3]**, उशिज्, वणिज्** इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहियें।

परन्तु कोई-कोई जकारान्त शब्दों के प्रयोगों में कुछ विशेष कार्य्य भी होता है। जैसे—

परिव्राज्—

इस शब्द के पदान्त में सर्वत्र जकार को षकारादेश* होता है। षकार के स्थान में ट्, ड् पूर्ववत् होके—परिव्राट्; परिव्राड्। परिव्राड्भ्याम्। परिव्राड्भिः। परिव्राजे। परिव्राड्भ्याम्। परिव्राड्भ्य; इत्यादि पूर्ववत् जानो। परिव्राट्त्सु; परिव्राट्सु। यहां भी सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं॥

इसी प्रकार—×**विश्वभ्राज्, सम्राज्, विश्वराज्, विराज्, यवभृज्** इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी जानने चाहियें॥

परन्तु **युज्**[4] और **अवयाज्** इन दो शब्दों में कुछ विशेष है—"युज्+सु"—

---

१. ग् को क्—(खरि च॥ ८। ४। ५४) सन्धि०—२३४॥

२. स् को ष—(आदेशप्रत्यययोः॥ ८। ३। ५९) नामिक—३६॥

३. 'भुरिज्' इत्यादि शब्दों को (चोः कुः॥ ८। २। ३०) सन्धि०—१८८॥ [से कुत्व]

४. 'युज्' यह युक्त होने वाले का नाम है॥

* यहां ज् को ष् 'परौ व्रजेः षश्च पदान्ते' (उणादि० २। ५९) से होता है। सम्पा०।

× इन शब्दों के ज् को ष् (व्रश्चभ्रस्ज० ८. २. ३६ से) होता है। सं०।

५२४–युजेरसमासे ।। १२० ।। अ० ७ । १ । ७१ ।।

सर्वनामस्थान विभक्तियों में युज् शब्द को नुम् का आगम हो ।

जैसे—'युन्ज्+सु' यहां अन्य कार्य 'प्राङ्' शब्द के तुल्य समझना चाहिये—युङ् । युञ्जौ । युञ्जः । युञ्जम् । युञ्जौ । युजः । युजा । युग्भ्याम् । युग्भिः । युजे । युग्भ्याम् । युग्भ्यः । युजः । युग्भ्याम् । युग्भ्यः । युजः । युजोः । युजाम् । युजि । युजोः । युक्षु ।।

इन उक्त शब्दों में जहां कहीं सम्बोधन की योग्यता हो, वहां प्रथमा विभक्ति के तुल्य ही सम्बोधन में भी प्रयोग समझने चाहियें ।।

अवयाज्[1]—

'अवयाज्+सु' इसकी [जिन] विभक्तियों में पदसञ्ज्ञा होती है [वहां]—

५२५–वा०–श्वेतवाहादीनां डस् पदस्य ।। १२१ ।।

अ० ३ । २ । ७१ ।।

श्वेतवाहादि प्रातिपदिकों को पदान्त में डस् आदेश हो ।

श्वेतवाहादिकों में 'अवयाज्' शब्द भी है । प्रथमा विभक्ति के एकवचन में इस के 'आज्' मात्र को 'डस्' होकर—'अवयस्' यहां—

५२६–अत्वसन्तस्य चाधातोः ।। १२२ ।।

अ० ६ । ४ । १४ ।।

---

१. यहां अवपूर्वक यज धातु से (अवे यजः ।। ३ । २ । ७२ ।) इस-सूत्र से क्विन् प्रत्यय होता है ।।

जो सम्बुद्धिभिन्न सुविभक्ति परे हो, तो धातुरहित अत्वन्त और असन्त शब्द की उपधा को दीर्घादेश हो ।

अवयाः ॥

अवयाजौ, अवयाजः । अवयाजम्, अवयाजौ, अवयाजः । अवयाजा ।

'अवयाज्' आदि शब्दों को हलादि विभक्तियों में डस् हो के—'अवयस्+भ्याम्' यहां (ससजुषो रुः ॥ ८ । २ । ६६) इस (ना०—१६) सूत्र से पदान्त सकार-को रु हो के—'अवय+रु+भ्याम्' यहां रुकार के उकार की इत्सञ्ज्ञा, लोप, रेफ को उकार[1] और पूर्व पर को गुण एकादेश ओकार होके—अवयोभ्याम् । अवयोभिः ॥

अवयाजे, अवयोभ्याम्, अवयोभ्यः । अवयाजः, अवयोभ्याम्, अवयोभ्यः । अवयाजः, अवयाजोः अवयाजाम् । अवयाजि, अवयाजोः । अवयस्सु; अवयःसु ॥

सम्बोधन में—

५२७–अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च[2] ॥ १२३ ॥

अ० ८ । २ । ६७ ॥

अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडाः, ये निपातन हैं ।

हे अवयाः ! हे अवयाजौ, हे अवयाजः !

---

१. र् रो उ—(हशि च ॥ ६ । १ । ११३) सन्धि०—१५३ ॥

२. हे '**अवयस्**' यहां उक्त सूत्र ['अत्वसन्तस्य०'] से दीर्घ नहीं पाता है । इस कारण दीर्घ सिद्ध करने के लिये यह सूत्र है ।

अथ टकारान्तविषयः ॥

टकारान्त स्त्रीलिङ्ग वा पुँल्लिङ्ग सरट् शब्द

'सरट्+सु' यहां (हल्ङ्या० ॥ ६ । १ । ६८) इस (ना—५०) सूत्र से लोप और विकल्प से चर हो के—सरट्; सरड् ॥

सरटौ, सरटः । सरटम्, सरटौ, सरटः । सरटा, 'सरट्+भ्याम्' यहां जश्[1] होके—सरड्भ्याम्, सरड्भिः । सरटे, सरड्भ्याम्, सरड्भ्यः । सरटः, सरड्भ्याम्, सरड्भ्यः । सरटः । सरटोः, सरटाम् । सरटि, सरटोः, सरट्त्सु, सरट्सु । सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं ॥

इसी प्रकार अन्य भी—**लघट्** आदि टकारान्त शब्दों के रूप समझने चाहियें ॥

अथ तकारान्तविषयः ॥

तकारान्त नियतपुँल्लिङ्ग मरुत् शब्द—

'मरुत्+सु' पूर्ववत्—मरुत्; मरुद्, मरुतौ, मरुतः । मरुतम्, मरुतौ, मरुतः । मरुता, मरुद्भ्याम्, मरुद्भिः । मरुते, मरुद्भ्याम् मरुद्भ्यः । मरुतः, मरुद्भ्याम्, मरुद्भ्यः । मरुतः । मरुतोः, मरुताम् । मरुति, मरुतोः, मरुत्सु । सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं ॥

इसी प्रकार—**हरित्, रोहित्, संश्चत्, तृपत्, वेहत्,** इत्यादि तकारान्त स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्ग शब्दों के प्रयोग समान ही जानने चाहियें ॥

---

१. जश्—(झलां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३९) सन्धि०—१८९ ॥

अब उन तकारान्तों को दिखलाते हैं कि जिनमें कुछ विशेष कार्य होते हैं—

तकारान्त नियतपुंल्लिङ्ग पठत्[1] शब्द—

'पठत्+सु' यहां सर्वनामस्थान में नुम्[2] और संयोगान्तलोप होके—पठन् । पठन्तौ । पठन्तः । पठन्तम् । पठन्तौ । पठतः । आगे 'मरुत्' शब्द के समान प्रयोग जानने चाहियें ।

इसी प्रकार—**पचत्, कुर्वत्, गच्छत्, पृषत्, बृहत्,** इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहियें ।।

महत् शब्द में कुछ विशेष है । जैसे—

'महत्+सु' यहां पूर्ववत् नुम् का आगम हो के 'महन्त्+सु' इस अवस्था में—

५२८–सान्तमहतः संयोगस्य ।। १२४ ।। अ० ६ । ४ । १० ।।

जो सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो तो सकारान्त संयोगी शब्द और महत् शब्द के नकार की उपधा को दीर्घ हो ।

यहां भी पूर्ववत् तकार का लोप और दीर्घ होके—**महान्** । **महान्तौ** । महान्तः । महान्तम् । महान्तौ । आगे के प्रयोग **'मरुत्'** शब्द के समान जानने चाहियें ।।

---

१. 'पठत्' पढ़ने वाले को कहते हैं । 'पठत्' आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में ङीबन्त होकर प्रयोग विषय में 'कुमारी' शब्द के समान हो जाते हैं ।।

२. नुम्—(उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ।। ७।१।७०) नामिक—११३ ।।

[गोमत्, यवमत्, धनवत्, अश्ववत्, विद्यावत् इत्यादि] 'मतुप् प्रत्ययान्त तकारान्त' शब्दों को 'असन्त' शब्दों के समान सम्बुद्धिभिन्न सु विभक्ति में दीर्घ[1] होता है—**गोमान्, यवमान्, धनवान्, अश्ववान्, विद्यावान्** इत्यादि आगे विभक्तियों में रूप 'पठत्' शब्द के समान-समान समझना चाहिये—गोमता, गोमद्भ्याम्। इत्यादि। सम्बोधन में—हे गोमन्! हे यवमन्! हे धनवन्! इत्यादि ॥

अथ दकारान्तविषयः ॥

दकारान्त स्त्रीलिङ्ग सम्पद्[2] शब्द—

'सम्पद्+सु' यहां भी (हल्ङ्या० ॥ ६ । १ ।६८) इस (ना०—५०) सूत्र से लोप और विकल्प से चर् होकर दो प्रयोग होते हैं—सम्पद्; सम्पत्, सम्पदौ, सम्पदः इत्यादि ॥

इसी प्रकार—**शरद्, भसद्, दृषद्, विषद्, आपद् प्रतिपद् स्त्रीलिङ्ग** और **वेदविद्, काष्ठभिद्, नखच्छिद्** इत्यादि दकारान्त शब्दों के रूप **तीनों लिङ्गों** में समान समझने चाहियें। जैसे—

शरत्; शरद्, शरदौ, शरदः, इत्यादि। और—वेदवित्; वेदविद्, वेदविदौ, वेदविदः। इत्यादिवत् ॥

---

१. दीर्घ—(अत्वसन्तस्य चाधातोः ॥ ६ । ४ । १४) नामिक—१२२ ॥

२. 'सम्पद्' यह धनादि ऐश्वर्य का द्योतक है ॥

अथ नकारान्तविषयः ॥

नकारान्त पुंल्लिङ्ग राजन् शब्द–

राजन्+सु' यहां दीर्घ[1] और नलोप[2] होकर—राजा, राजानौ, राजानः। राजानम्, राजानौ, 'राजन्+शस्' यहां अल्लोप[3] होकर—'राज्न्+अस्' नकार को ञकारदेश[4] होकर—राज्ञः। राज्ञा ॥

'राजन्+भ्याम्' यहां भी नकार का लोप होके—'राजभ्याम्'। अब यहां नलोप के पश्चात् (सुपि च ॥ ७। ३। १०२) इस (ना.—२८) सूत्र से दीर्घादेश क्यों न हो। सो यह नलोप के असिद्ध[5] होने से नहीं होता। राजभिः। राज्ञे, राजभ्याम्, राजभ्यः। राज्ञः, राजभ्याम्, राजभ्यः। राज्ञः, राज्ञोः राज्ञाम् ॥

'राजन्+ङि' यहां (विभाषा ङिश्योः ॥ ६। ४। १३६) इस (ना०—७६) सूत्र से अकार का लोप विकल्प से होकर दो प्रयोग बन जाते हैं—राज्ञि; राजनि। सम्बोधन में—हे राजन्। हे राजानौ। हे राजानः ॥

---

१. दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ॥ ६। ४। ८) नामिक—४६ ॥
२. नलोप—(नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ८। २। ७) नामिक—६८ ॥
३. अल्लोप—(अल्लोपोऽनः ॥ ६। ४। १३४) नामिक—७५ ॥
४. न् को ञ्—(स्तोः श्चुना श्चुः ॥ ८। ४। ३९) सन्धि०—२१२ ॥
५. नलोप असिद्ध—(नलोपःसुप्स्वरसञ्ज्ञातुग्विधिषु कृति ॥ ८। २। २) सन्धि०—१२२ ॥

इसी प्रकार—**वृषन्, तक्षन्, प्लीहन्, क्लेदन्, स्नेहन्, मूर्द्धन्, मज्जन्, विश्वप्सन्, स्थामन्, सुत्रामन्, धरिमन्, शरिमन्, जनिमन्, प्रथिमन्, म्रदिमन्, महिमन्, सुदामन्, सुधीवन्, घृतपावन्, भूरिदावन्,** इत्यादि शब्दों के रूप भी समझने चाहियें ।

और जिन नकारान्त शब्दों में कुछ विशेष कार्य होता है, उनको यहां लिखते हैं—

पुँल्लिङ्ग नकारान्त आत्मन् शब्द—

आत्मा, आत्मानौ, आत्मानः । आत्मानम्, आत्मानौ ।।

इस शब्द में इतना विशेष है कि—शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, औस्, आम्, ङि, ओस् इन विभक्तियों में भसञ्ज्ञा के होने से ['अल्लोपोऽनः' इस सूत्र से जो अकार का लोप प्राप्त होता है उसका]—

५२९—न संयोगाद्वमन्तात् ।। १२५ ।। अ० ६ । ४ । १३७ ।।

जो वकारान्त और मकारान्त संयोग से परे अन् हो, तो तदन्त भसञ्ज्ञक अकार का लोप न हो ।

जैसे—आत्मनः । आत्मना । आत्मने । आत्मनः । आत्मनः, आत्मनो, आत्मनाम् । आत्मनि, आत्मनोः ।।

इसी प्रकार—**सुशर्मन्, सुधर्मन्, अश्मन्, शक्मन्, परिज्मन्, यज्वन्, सुपर्वन्, अथर्वन्, मातरिश्वन्,** इत्यादि शब्दों के रूप भी जानने चाहियें ।।

परन्तु नकारान्त पुँल्लिङ्ग **अर्यमन्** और **पूषन्** शब्दों के रूप में इतना विशेष है कि जहां कहीं समास होकर ये दोनों नपुंसकलिङ्ग हो जावें, वहां प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में—

५३०—इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ।। १२६ ।। अ० ६ । ४ । २१ ।।

इन्, हन्, पूषन्, और अर्यमन्, ये जिनके अन्त में हों, उन अङ्गों की उपधा को शि विभक्ति परे हो तो दीर्घ हो जावे ।।

यह सूत्र नियमार्थ है, अर्थात् जो सर्वत्र सर्वनामस्थान में नकारान्त की उपधा को दीर्घादेश प्राप्त था, सो न हो, किन्तु 'शि' में ही हो । जैसे—बहुपूषाणि । बह्वर्यमाणि ।।

५३१—सौ च ।। १२७ ।। अ० ६ । ४ । १३ ।।

और पुँल्लिङ्ग में भी, [सम्बुद्धिभिन्न] सु विभक्ति परे हो तो इन्, हन्, पूषन् और अर्य्यमन् इनकी उपधा को दीर्घ हो ।

जैसे—धनी । शत्रुहा । पूषा । अर्य्यमा, इनको अन्य विभक्तियों में नियम के होने से दीर्घ नहीं होता । जैसे—पूषणौ । अर्य्यमणौ । पूषणः । अर्य्यमणः । पूषणम् । अर्य्यमणम् । पूषणौ । अर्य्यमणौ । आगे इनके रूप 'राजन्' शब्द के समान समझने चाहियें ।।

वेद में षपूर्व नान्त की उपधा में कुछ विशेष है । जैसे—

५३२—वा षपूर्वस्य निगमे ।। १२८ ।। अ० ६ । ४ । ९ ।।

जो वेद में सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो षकार पूर्व **वा** ,नान्त की उपधा के अच् को विकल्प करके दीर्घ हो ।

स तक्षाणं तिष्ठन्तमब्रवीत्; [मै. सं. २. ४. १], स तक्षणं तिष्ठन्तमब्रवीत् । ऋभुक्षाणमिन्द्रम्; ऋभुक्षणमिन्द्रम् [ऋ. १, १११. ४] इत्यादि ।।

श्वन्, युवन्, और मघवन् शब्दों के प्रयोग सर्वनामस्थान में 'राजन्' शब्द के समान होते हैं, परन्तु सर्वनामस्थान-भिन्न अजादि विभक्तियों में कुछ विशेष है । जैसे—

श्वा । श्वानौ । श्वानः । श्वानम् । [श्वानौ] ।।

'श्वन्+शस्'—

५३३—श्वयुवमघोनामतद्धिते ।। १२६ ।। अ० ६ । ४ । १३३ ।।

जो भसञ्ज्ञक श्वन्, युवन् और मघवन् अङ्ग हैं, उनको सम्प्रसारण हो ।

इससे वकार को उकार हुआ । जैसे—'शुअन्+शस्' ।

५३४—सम्प्रसारणाच्च ।। १३० ।। अ० ६ । १ । १०७ ।।

जो सम्प्रसारणसञ्ज्ञक वर्ण से परे अच् हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो ।

इससे उकार अकार को मिल के उकार हुआ । जैसे—शुनः । शुना ।।

श्वभ्याम्, श्वभिः । शुने, श्वभ्याम्, श्वभ्यः । शुनः, श्वभ्याम्, श्वभ्यः । शुनः, शुनोः, शुनाम्, । शुनि, शुनोः, श्वसु ।।

युवा, युवानौ, युवानः । युवानम्, युवानौ, यूनः[1] ।

---

१. 'यूनः' यहां सम्प्रसारण होकर 'यु+उ+नः' इस अवस्था में सवर्णदीर्घ एकादेश हो जाता है ।।

यूना, युवभ्याम्, युवभिः । यूने, युवभ्याम्, युवभ्यः । यूनः; युवभ्याम्, युवभ्यः । यूनः, यूनोः, यूनाम् । यूनि, यूनोः, युवसु ।।

मघवा, मघवानौ, मघवानः । मघवानम्, मघवानौ, मघोनः । मघोना, मघवभ्याम्, मघवभिः । मघोने, मघवभ्याम्, मघवभ्यः । मघोनः, मघवभ्याम्, मघवभ्यः । मघोनः, मघोनोः, मघोनाम् । मघोनि, मघोनोः, मघवसु । सम्बोधन में—हे मघवन् ! हे मघवानौ ! हे मघवानः !

५३५–मघवा बहुलम् ।। १३१ ।। अ० ६ । ४ । १२८ ।।

मघवन् इस अङ्ग को तृ आदेश बहुल करके हो ।

जैसे—मघवतृ+सु' यहां ऋकार की इत्सञ्ज्ञा, लोप, नुम्[1] और उपधादीर्घ[2] आदि कार्य होकर—मघवान्, मघवन्तौ, मघवन्तः । मघवन्तम्, मघवन्तौ, मघवतः[3] । मघवता,

---

१. नुम्—(उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ।। ७ । १ । ७०) नामिक—११३ ।।

२. उपधा दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ।। ६ । ४ । ८) नामिक—४६ ।।

३. (श्वयुवमघोनामतद्धिते ।। ६ । ४ । १३३) इस सूत्र में 'मघवन्' शब्द के नकारान्त निर्देश से इनके तृभाव अर्थात् मघवतृ शब्द को सम्प्रसारण नहीं होता । अथवा 'श्वयुव०' इस सूत्र में (अल्लोपोऽनः ।। ६ । ४ । १३४) इस उत्तर सूत्र से 'अनः' इस पद का आकर्षण करके, श्व, युव, मघव, इत्यादि [अन्नन्त =] नकारान्त शब्दों ही को सम्प्रसारण होता है ।

'मघवत्+भ्याम्,' यहां जश् होके—मघवद्भ्याम्, मघवद्भिः, इत्यादि ।।

नकारान्त नपुंसकलिङ्ग सामन् शब्द—

'सामन्+सु' यहां सुलोप[1] और नलोप[2] होकर—साम । 'सामन्+औ' औकार के स्थान में शी[3] आदेश और विकल्प करके अकार का लोप[4] होकर—साम्नी; सामनी । 'सामन्+जस्' शि[5] आदेश और नान्त को उपधा को दीर्घ[6] होके—सामानि । फिर भी—साम । साम्नी; सामनी । सामानि । आगे 'राजन्' शब्द के समान इसके प्रयोग जानने चाहिये ।।

सम्बोधन में इतना विशेष है कि—

५३६—वा०—नपुंसकानाम् ।। १३२ ।। अ० ८ । २ । ८ ।।

सम्बुद्धि में नपुंसकलिङ्ग शब्दों में नकार का लोप विकल्प करके होवे ।—हे साम; हे सामन् !

---

१. सुलोप—(स्वमोर्नपुंसकात् ।। ७ । १ । २३) नामिक—७२ ।।
२. नलोप—(नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ।। ८ । २ । ७) नामिक—६८ ।।
३. शी आदेश—(नपुंसकाच्च ।। ७ । १ ।१९) नामिक—४२ ।।
४. अलोप विकल्प—(विभाषा ङिश्योः ।। ६ । ४ । १३६) नामिक—७६ ।।
५. शि आदेश—(जश्शसोः शिः ।। ७ । १ । २०) नामिक—४३ ।।
६. नान्तोपधा दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ।। ६ । ४ । ८) नामिक—४६ ।।

इसी प्रकार—**सीमन्, नामन्, व्योमन्, रोमन्, लोमन्, पामन्** इत्यादि शब्दों के रूप भी जानने चाहियें ।।

और जो—**कर्मन्, चर्मन्, भस्मन्, जन्मन्, शर्मन्** इत्यादि मकारान्त संयोग वाले नकारान्त नपुंसक शब्द हैं, उनके प्रयोग सर्वनामस्थान में [अलोप को छोड़कर] 'सामन्' शब्द के समान और अन्य विभक्तियों में 'आत्मन्' शब्द के समान समझने चाहियें। जैसे—कर्मणा इत्यादि ।।

नकारान्त पुँल्लिङ्ग वृत्रहन् शब्द–

'वृत्रहम्+सु' यहां (सौ च ।। ६ । ४ । १३) इस (ना०—१२७) सूत्र से दीर्घ होके—वृत्रहा ।।

'वृत्रहन्+औ'—

५३७–एकाजुत्तरपदे णः ।। १३३ ।। अ० ८ । ४ । १२ ।।

जिस समास में एकाच् शब्द उत्तरपद हो, उसमें पूर्वपदस्थ रेफ षकार से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो ।

जैसे—वृत्रहणौ, वृत्रहणः । वृत्रहणम्, वृत्रहणौ ।।

'वृत्रहन्+शस्' यहां हन् के अकार का लोप[1] होकर—

५३८–हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ।। १३४ ।। अ० ७ । ३ । ५४ ।।

ञित् णित् प्रत्यय वा नकार परे हो तो हन् धातु के हकार को घकारादेश हो ।

१ अलोप—(अल्लोपोऽनः ।। ६ । ४ । १३४) नामिक—७५ ।।

वृत्रघ्नः[1] । वृत्रघ्ना, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिः । वृत्रघ्ने, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्यः । वृत्रघ्नः, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्यः । वृत्रघ्नः, वृत्रघ्नोः, वृत्रघ्नाम् । वृत्रघ्नि, वृत्रहणि, वृत्रघ्नोः, वृत्रहसु । हे वृत्रहन् ! हे वृत्रहणौ ! हे वृत्रहणः !

इसी प्रकार—**ब्रह्मन्, भ्रूणहन्** इत्यादि शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

नकारान्त नपुंसकलिङ्ग अहन् शब्द—

'अहन्+सु'—

५३९–अहन् ।। १३५ ।। अ० ८ । २ । ६८ ।।

पदान्त में अहन् शब्द को रु आदेश हो ।

विसर्जनीय होके—अहः ।।

'अहन्+औ'—'सामन्' शब्द के समान—अह्नी; अहनी, अहानि । फिर भी—अहः, अह्नी; अहनी, अहानि । अह्ना, 'अहन्+भ्याम्' यहां भी नकार को रु, उसके रेफ को उकार और अकार उकार को गुण एकादेश होके—अहोभ्याम्, अहोभिः । अह्ने, अहोभ्याम्, अहोभ्यः । अह्नः, अहोभ्याम्, अहोभ्यः । अह्नः, अह्नोः, अह्नाम् । अह्नि; अहनि, अह्नोः, अहस्सु; अहःसु ।।

यद्यपि 'णिनि' तथा 'इनि' प्रत्ययान्त अनेक नकारान्त शब्दों में कुछ विशेष नहीं, तथापि उनमें से एक के प्रयोग लिखते हैं—

---

१. 'वृत्रहन्' इस अवस्था में (अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ।। १ । १ । ५६) सन्धि० —९४ इस परिभाषा से अलोप स्थानिवत् हो, तो नकार-परक 'ह' न मिले । [अतः] हकार के कुत्वविधानसामर्थ्य से यहां अलोप स्थानिवत् नहीं होता ।।

इन्नन्त पुंल्लिङ्ग दण्डिन् शब्द–

'दण्डिन्+सु' यहां (सौ च ॥ ६।४।१३) इस (ना०—१२७) सूत्र से दीर्घ होके—दण्डी, दण्डिनौ, दण्डिनः। दण्डिनम्, दण्डिनौ, दण्डिनः। दण्डिना, दण्डिभ्याम्, दण्डिभिः। दण्डिने, दण्डिभ्याम्, दण्डिभ्यः। दण्डिनः, दण्डिभ्याम्, दण्डिभ्यः। दण्डिनः, दण्डिनोः, दण्डिनाम्। दण्डिनि, दण्डिनोः, दण्डिषु। सम्बोधन में—हे दण्डिन्! हे दण्डिनौ! हे दण्डिनः!

इसी प्रकार—**धनिन्**, **कुमारघातिन्**, **शीर्षघातिन्**, **उष्णभोजिन्**, **साधुकारिन्**, **ब्रह्मवादिन्**, **ध्वाङ्क्षराविन्** **स्थण्डिलशायिन्**, **पण्डितमानिन्**, **सोमयाजिन्** इत्यादि शब्दों के प्रयोग जानने चाहियें॥

'दण्डिन्' आदि शब्द यदि किसी प्रकार नपुंसकलिङ्ग में भी आवें, तो उनके प्रयोग प्रायः 'वारि' शब्द के समान समझने चाहियें। परन्तु षष्ठीविभक्ति के बहुवचन में दण्डिन् आदि नकारान्त शब्दों को दीर्घ नहीं होगा॥

नकारान्त—**पञ्चन्**, **सप्तन्**, **और अष्टन्** इत्यादि बहुवचनान्त सङ्ख्यावाची शब्द तीनों लिङ्गों में समान ही होते हैं—

अष्टन्+जस्—

५४०–अष्टन आ विभक्तौ ॥ १३६ ॥ अ० ७।२।८४॥

विभक्तिमात्र परे हो तो अष्टन् शब्द को आकारादेश हो।

यद्यपि सूत्र में विकल्प ग्रहण नहीं है तथापि (अष्टाभ्य-औश् ॥ ७।१।२१) इस (ना०—१३७) सूत्र में आकारान्त

अष्टन् शब्द के ग्रहण से सूचित होता है कि अष्टन् शब्द को आकारादेश विकल्प करके होता है । जैसे—'अष्टा+जस्'; 'अष्टन्+जस्' इस अवस्था में—

५४१–अष्टाभ्य औश् ।। १३७ ।। अ० ७ । १ । २१ ।।

जिसको आकारादेश किया हो ऐसे अष्टन् शब्द से परे जस् और शस् विभक्ति को औकारादेश हो ।

वृद्धि एकादेश होकर—अष्टौ । अष्टौ ।

द्वितीय पक्ष में—

५४२–ष्णान्ता षट् ।। १३८ ।। अ० १ । १ । २४ ।।

षकारान्त और नकारान्त सङ्ख्यावाची शब्द षट्सञ्ज्ञक हों ।

षट्सञ्ज्ञा होकर—

५४३–षड्भ्यो लुक् ।। १३९ ।। अ० ७ । १ । २२ ।।

षट्सञ्ज्ञक अर्थात् षकारान्त और नकारान्त सङ्ख्यावाची शब्दों से परे जस् और शस् विभक्ति का लुक् हो ।

अष्ट तिष्ठन्ति । अष्ट पश्य ।।

अष्टभिः; अष्टाभिः; अष्टभ्यः; अष्टाभ्यः । अष्टभ्यः; अष्टाभ्यः ।।

'अष्टन्+आम्' इस अवस्था में—

५४४–षट्चतुर्भ्यश्च ।। १४० ।। अ० ७ । १ । ५५ ।।

षट्सञ्ज्ञक और चतुर् शब्द से परे आम् विभक्ति को नुट् का आगम हो ।

५४५–नोपधायाः ।। १४१ ।। अ० ६ । ४ । ७ ।।

नुट्सहित आम् विभक्ति परे हो, तो नान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो।

जैसे—'अष्टान्+नाम्' न लोप होकर—अष्टानाम् ॥

अष्टसु; अष्टासु ॥

पञ्च । पञ्च । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः । पञ्चभ्यः । पञ्चानाम् । पञ्चसु ॥

इसी प्रकार—**सप्तन्, नवन्, दशन्,** इत्यादि षट्सञ्ज्ञक शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ॥

तथा नकारान्तों में **प्रतिदिवन्** शब्द में कुछ विशेष है—

प्रतिदिवा । प्रतिदिवानौ । प्रतिदिवानः । प्रतिदिवानम् । प्रतिदिवानौ । 'प्रतिदिवन्+शस्' यहां (अल्लोपोऽनः ॥ ६ । ४ । १३४) इस (ना०—७५) सूत्र से भसञ्ज्ञा में अकार का लोप होके—

५४६—हलि च ॥ १४२ ॥ अ० ८ । २ । ७७ ॥

हल् परे हो, तो रेफान्त वकारान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ हो।

इससे भसञ्ज्ञा में सर्वत्र ही दीर्घ होके—प्रतिदीव्नः । प्रतिदीव्ना । प्रतिदीव्ने । प्रतिदीव्नः । प्रतिदीव्नः । प्रतिदीव्नोः । प्रतिदीव्नाम् । प्रतिदीव्नि । प्रतिदीवनि[1] । प्रतिदीव्नोः ॥

इन्नन्त शब्दों के प्रयोगों में—**पथिन्, मथिन्, और ऋभुक्षिन्,** इन तीन शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं।

---

१. यहां (विभाषा ङिश्योः ॥ ६ । ४ । १३६) नामिक—७६ इस सूत्र से विकल्प करके अलोप होकर दो प्रयोग हो जाते हैं ॥

'पथिन्+सु'

५४७–पथिमथ्यृभुक्षामात् ।। १४३ ।। अ० ७ । १ । ८५ ।।

सु विभक्ति परे हों तो पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन शब्दों को आकारादेश हो ।

यहां नकार के स्थान में आकारादेश होके—'पथि+आ+सु' इस अवस्था में—

५४८–इतोऽत्सर्वनामस्थाने ।। १४४ ।। अ० ७ । १ । ८६ ।।

सर्वनामस्थान विभक्तियाँ परे हों तो पथिन् आदि शब्दों के इकार को अकारादेश हो ।

'पथ्+अ+आ+सु' इस अवस्था में—

५४९–थो न्थः ।। १४५ ।। अ० ७ । १ । ८७ ।।

पथिन् और मथिन् शब्द के थकार को सर्वनामस्थान विभक्तियाँ परे हों तो 'न्थ' आदेश हो ।

इससे 'न्थ' आदेश होकर—पन्थ्+अ+आ+सु' यहां अकार और आकार को दीर्घ एकादेश होके—पन्थाः ।।

'पथिन्+औ' यहां इकार को अकार होकर—पन्थानौ । पन्थानः । पन्थानम् ।।

'पथिन् +शस्'—

५५०–भस्य टेर्लोपः ।। १४६ ।। अ० ७ । १ । ८८ ।।

भसञ्ज्ञक पथिन् आदि शब्दों की टि अर्थात् इन्मात्र का लोप हो ।

जैसे—'पथ्+शस्' = पथः ।।

पथा । पथिभ्याम् । पथिभिः । पथे । पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः । पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः । पथोः । पथाम् । पथि । पथोः । पथिषु ॥

इसी प्रकार—**मथिन्** और **ऋभुक्षिन्** शब्दों के रूप भी समझने चाहियें ॥

अथ पकारान्तविषयः ॥

पकारान्त अनियतलिङ्ग सुप् शब्द—

'सुप्+सु' यहां (हल्ङ्याब्० ॥ ६ । १ । ६८) इस (ना०—५०) सूत्र से सकार का लोप होके—सुप्, सुब् । 'सुप्+औ'=सुपौ । सुपः । सुपम् । सुपौ । सुपः । सुपा । 'भ्याम्' आदि झलादि विभक्तियों में पकार को बकार[1] हो जाता है—सुब्भ्याम् । सुब्भिः । सुपे । सुब्भ्याम् । सुब्भ्यः । सुपः । सुब्भ्याम् । सुब्भ्यः । सुपः । सुपोः । सुपाम् । सुपि । सुपोः । सुप्सु ॥

इसी प्रकार—**तिप्, मिप्, कप्, शप्**, आदि शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहियें । परन्तु अप् शब्द में कुछ विशेष है ॥

पकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त अप् शब्द—

अप् शब्द से सातों विभक्तियों के बहुवचन ही आते हैं । 'अप्+जस्' यहां दीर्घ[2] होके—आपः । 'अप्+शस्' यहां कुछ विशेष नहीं—अपः ॥

---

१. प् को ब्—(झलां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३९ सन्धि०—१८९ ॥

२. दीर्घ—(अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् ॥ ६ । ४ । ११) नामिक—१०४ ॥

'अप्+भिस् यहां—

५५१—अपो भि ॥ १४७ ॥ अ० ७ । ४ । ४८ ॥

भकारादि प्रत्यय परे हो तो अप् शब्द के अन्त को तकारादेश हो ॥

तकार के स्थान में दकार होकर—अद्भिः अद्भ्यः । अद्भ्यः ॥

अपाम् । अप्सु ॥

अथ भकारान्तविषयः ॥

भकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग ककुभ्[1] शब्द—

'ककुभ्+सु' यहां सु के सकार का लोप[2] होके भकार [को बकार[3] और उस] के स्थान में विकल्प करके झलों को चर[4] होते हैं। जैसे—ककुब् ककुप् । ककुभौ । ककुभः । ककुभम् । ककुभौ । ककुभः । ककुभा । ककुब्भ्याम् ककुब्भिः । ककुभे । ककुब्भ्याम् । ककुब्भ्यः । ककुभः । ककुब्भ्याम् । ककुब्भ्यः । ककुभः । ककुभोः । ककुभाम् । ककुभि । ककुभोः । ककुप्सु ॥

---

१. 'ककुभ्' यह दिशा का नाम है ।

२. स् का लोप—(हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ॥ ६ । १ । ६८) नामिक—५० ॥

३. भ् को ब्—(झलाँ जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३९) सन्धि०—१८९ ॥

४. चर् विकल्प—(वावसाने ॥ ८ । ४ । ५५) नामिक—११२ ॥

इसी प्रकार—**त्रिष्टुभ्ः अनुष्टुभ्**, आदि शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ॥

अथ रेफान्तविषयः ॥

रेफान्त नियतस्त्रीलिङ्ग गिर् शब्द—

'गिर्+सु' यहां भी सकार का लोप होकर—

५५२–र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ॥ १४८ ॥ अ० ८ । २ । ७६ ॥

जो पदान्त में रेफवकारान्त [=रेफान्त तथा वकारान्त] धातु की उपधा इक्, उसको दीर्घ हो ।

गीः । गिरौ । गिरः । गिरम् । गिरौ । गिरः । गिरा । गीर्भ्याम् । गीर्भिः । गिरे । गीर्भ्याम् । गीर्भ्यः । गिरः । गीर्भ्याम् । गीर्भ्यः । गिरः । गिरोः । गिराम् । गिरि । गिरोः ॥

'गिर्+सु' यहां खर् परे होने से रु के स्थान में विसर्जनीय[1] पाते हैं । इसलिये यह उत्तरसूत्र नियमार्थ है—

५५३–रोः सुपि ॥ १४९ ॥ अ० ८ । ३ । १६ ॥

सुप् अर्थात् सप्तमी बहुवचन परे रहने पर रेफ के स्थान में विसर्जनीय हों, तो रु के ही रेफ को हो ।

इससे 'गिर्' इसके रेफ को विसर्जनीय न हुए । उपधा को दीर्घ और सकार को मूर्द्धन्यादेश[2] होके—गीर्षु ॥

---

१. विसर्जनीय—(खरवसानयोर्विसर्जनीयः । ८ । ३ । १५) सन्धि—२५८ ॥

२. स् को ष्—(आदेशप्रत्यययोः ॥ ८ । ३ । ५९) नामिक—३६ ॥

इसी प्रकार—**धुर्, पुर्, तुर्, भुर्, जूर्, तूर्**, इत्यादि शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

परन्तु रेफान्त शब्दों में **चतुर्**, शब्द के प्रयोग विशेष होते हैं। इस शब्द से बहुवचन विभक्ति ही आती है। और तीनों लिङ्गों में इसका प्रयोग किया जाता है—

'चतुर्+जस्'—

५५४–चतुरनडुहोरामुदात्तः ।। १५० ।। अ० ७ । १ । ९८ ।।

जो सर्वनामस्थान विभक्ति परे हो, तो चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् का आगम [हो] और वह उदात्त भी हो।

आम् आगम तु से परे होकर—'चतु+आम्+र्+जस्' यणादेश, विसर्जनीय और इत्सञ्ज्ञादि कार्य्य होकर—चत्वारः ।।

'चतुर्+शस्'=चतुरः, **पुंल्लिङ्ग** में ऐसे प्रयोग होते हैं। **नपुंसकलिङ्ग** में जस् और शस् विभक्ति के स्थान में शि आदेश हो जाता है—चत्वारि । चत्वारि । **स्त्रीलिङ्ग** में त्रि, चतुर्, शब्द को तिसृ और चतसृ आदेश हो जाते हैं। यह सब व्यवस्था ऋकारान्त विषय में कह चुके हैं ।।

चतुर्भिः । चतुर्भ्यः । चतुर्भ्यः ।।

'चतुर+आम्' यहां आम् विभक्ति को नुट्[1] का आगम होकर—

---

१. आम् को नुट्—(षट्चतुर्भ्यश्च ।। ७ । १ । ५५) नामिक—१४० ।।

५५५–रषाभ्यां नो णः समानपदे ॥ १५१ ॥

अ० ८।४।१॥

एकपद में रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश हो।

इससे णकार और उसको द्वित्व[1] हो जाता है। चतुर्ण्णाम्। चतुर्षु ॥

उक्त 'त्रि' और 'चतुर्' शब्द किसी शब्द के साथ बहुव्रीहि समास में हों; तो [उनके प्रयोग] सब वचनों में होते हैं। जैसे—

प्रियचतुर्—

प्रियचत्वाः। प्रियचत्वारौ। प्रियचत्वारः। प्रियचत्वारम्। प्रियचत्वारौ। प्रियचतुरः। प्रियचतुरा। प्रियचतुर्भ्याम्। प्रियचतुर्भिः। प्रियचतुरे। प्रियचतुर्भ्याम्। प्रियचतुर्भ्यः। प्रियचतुरः। प्रियचतुर्भ्याम्। प्रियचतुर्भ्यः। प्रियचतुरः। प्रियचतुरोः। प्रियचतुराम्। प्रियचतुरि। प्रियचतुरोः। प्रियचतुर्षु। सम्बुद्धि परे रहने पर (अम् सम्बुद्धौ।७।१।९९) इस सूत्र से अम् का आगम होकर—हे प्रियचत्वः! हे प्रियचत्वारौ! हे प्रियचत्वारः!

'त्रि' शब्द के प्रयोग इकारान्त में नहीं लिखे, सङ्ख्यावाची के सम्बन्ध से यहां लिखते हैं।

इकारान्त सङ्ख्यावाची नियतबहुवचनान्त त्रि शब्द–

'त्रि+जस्' बहुवचन में (जसि च ॥७।३।१०९) इस (ना०—५७) सूत्र से गुण होके—त्रयः। 'त्रि+शस्'=त्रीन्।

---

१. द्वित्व—(अचो रहाभ्यां द्वे ॥ ८।४।४५) सन्धि०—२२०॥

नपुंसकलिङ्ग में 'जस्' और 'शस्' विभक्ति को शि आदेश, नुम् का आगम और दीर्घ होके—त्रीणि। त्रीणि। त्रिभिः। त्रिभ्यः। त्रिभ्यः॥

'त्रि+आम्' आम् विभक्ति परे रहने पर नुट् का आगम होके—'त्रि+नाम्' यहां—

५५६–त्रेस्त्रयः॥ १५२॥ अ० ७। १। ५३॥

आम् विभक्ति परे हो, तो त्रि शब्द को त्रय आदेश हो। त्रयाणाम्। त्रिषु॥

अथ वकारान्तविषयः॥

वकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग दिव्[1] शब्द–

'दिव्+सु' यहां—

५५७–दिव औत्॥ १५३॥ अ० ७। १। ८४॥

सु विभक्ति परे हो तो दिव् शब्द को औकारादेश हो।

इससे वकार के स्थान में औ होकर—'दि+औ+सु' यणादेश होके—द्यौः॥

दिवौ। दिवः। दिवम्। दिवौ। दिवः। दिवा। 'दिव्+भ्याम्'—

५५८–दिव उत्॥ १५४॥ अ० ६। १। १३०॥

पदान्त में दिव् शब्द के वकार को उत् आदेश हो।

वकार को उकार और पूर्व को यणादेश होकर—द्युभ्याम्।

---

१. यह प्रकाशमान पदार्थ का नाम है॥

द्युभिः । दिवे । द्युभ्याम् । द्युभ्यः । दिवः । द्युभ्याम् । द्युभ्यः । दिवः । दिवोः । दिवाम् । दिवि । दिवोः । द्युषु ।।

अथ शकारान्तविषयः ।।

शकारान्त स्त्रीलिङ्ग दिश्[1] शब्द–

'दिश्+सु' पदान्त में कुत्व[2] होकर—दिक्; दिग् । दिशौ । दिशः । दिशम् । दिशौ । दिशः । दिशा । दिग्भ्याम् । दिग्भिः । दिशे । दिग्भ्याम् । दिग्भ्यः । दिशः । दिग्भ्याम् । दिग्भ्यः । दिशः । दिशोः । दिशाम् । दिशि । दिशोः । 'दिक्+सु' यहां भी प्रत्यय सकार को मूर्द्धन्य षकार होकर—दिक्षु ।।

इसी प्रकार—**विश्, लिश्, घृतस्पृश्, दृश्, कीदृश्, ईदृश्, सपृश्, तादृश्, यादृश्, एतादृश्, त्यादृश्,** इत्यादि शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

वेद में यह विशेष है कि—

५५९–दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ।। १५५ ।।

अ० ७ । १ । ८३ ।।

वेद में दृगन्त, स्ववस् और स्वतवस् शब्दों को, सु विभक्ति परे हो तो नुम् का आगम हो ।

जैसे—ईदृङ् । कीदृङ् । यादृङ् । तादृङ् । सदृङ् । इत्यादि ।

---

१. 'दिश्' यह शब्द क्विन्प्रत्ययान्त है ।।

२. कुत्व—(क्विन्प्रत्ययस्य कुः ।। ८ । २ । ६२) नामिक—११५ इस सूत्र से ।।

'स्ववस्' और 'स्वतवस्' इन दोनों के प्रयोग सकारान्तों में देख लेना ।।

परन्तु इन तालव्यान्त शब्दों में यदि कोई शब्द नपुंसकलिङ्ग में भी आवे तो उसके प्रयोग इस प्रकार होंगे—

शकारान्त नपुंसकलिङ्ग सदृश् शब्द–

सदृक्; सदृग् । सदृशी । सदृंशि । फिर भी—सदृक्; सदृग् । सदृशी । सदृंशि । सदृशा, इत्यादि पूर्ववत् ।।

अथ सकारान्तविषयः ।।

सकारान्त नियतपुंल्लिङ्ग चन्द्रमस् शब्द–

'चन्द्रमस्+सु' यहां दीर्घ[१] होकर—चन्द्रमाः । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः । चन्द्रमसम् । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः । चन्द्रमसा । 'चन्द्रमस्+भ्याम्' यहां सकार को रु[२] और रु को उ[३] आदेश होकर—चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभिः । चन्द्रमसे । चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभ्यः । चन्द्रमसः । चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभ्यः । चन्द्रमसः । चन्द्रमसोः । चन्द्रमसाम् । चन्द्रमसि । चन्द्रमसोः । चन्द्रमस्सु; चन्द्रमःसु ।।

इसी प्रकार—**जातवेदस्, विश्वयशस्, द्रविणोदस्, विश्ववेदस्, विश्वभोजस्, अङ्गिरस्, नोधस्, पुरोधस्, वयोधस्, वेधस्, नृचक्षस्,**

---

१. दीर्घ—(अत्वसन्तस्य चाधातोः ॥ ६ । ४ । १४) नामिक—१२२ ॥

२. स् को रु—(ससजुषो रुः ॥ ८ । २ । ६६) नामिक—१६ ॥

३. रु को उ—(हशि च ॥ ६ । १ । ११३) सन्धि०—२५३ ॥

इत्यादि पुँल्लिङ्ग शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

पूर्व जितने शब्द लिखे हैं, वे सब असुन्प्रत्ययान्त हैं। असुन्प्रत्ययान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों में विशेष यह है कि—

सकारान्त पुँल्लिङ्ग उशनस् शब्द—

'उशनस्+सु' यहां अन्त्य को अनङ्[1] आदेश, अङ् मात्र की इत्सञ्ज्ञा और [पररूप] एकादेश होकर—'उशनन्+सु' यहां नान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ[2] और विभक्ति का लोप होके— उशना। और सम्बुद्धि में—हे 'उशनन्[3], हे उशन, हे उशनः। हे उशनसौ। हे उशनसः। अन्य सब प्रयोग 'चन्द्रमस्' शब्द के समान जानो ।।

इसी के समान—**अनेहस्, पुरुदंशस्,** इन दोनों के भी प्रयोग जानने चाहियें। परन्तु सम्बुद्धि में जो 'उशनस्' शब्द के तीन प्रयोग लिखे हैं, वैसे इन दोनों के नहीं होंगे, क्योंकि उशनस्, शब्द को सम्बुद्धि में भी विकल्प करके अनङादेश और नलोप कहा है। इन दोनों को नहीं ।।

सकारान्त शब्द बहुत प्रकार के होते हैं। उनमें से असुन्-प्रत्ययान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों को उक्त रीति से जानना चाहिये ।।

---

१. अनङ्—(ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ।। ७ । १ । ९४) नामिक—९८ ।।

२. नान्त दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ।। ६ । ४ । ८) नामिक—१४१ ।।

३. (उशनसः सम्बुद्धावपि पक्षेऽनङिष्यते [नलोपश्च वा] ।। ७ । १ ।९४) इस वार्तिक से विकल्प होकर तीन प्रयोग बन जाते हैं ।।

सकारान्त पुँल्लिङ्ग विद्वस् शब्द–

'विद्वस्+सु' यहां नुम्[1] का आगम होके—'विद्वन्+स्+सु' इस अवस्था में दीर्घ[2] सु के सकार का लोप[3] और संयोगान्तलोप[4] होकर—विद्वान् । विद्वांसौ । विद्वांसः । विद्वांसम् । विद्वांसौ ।।

'विद्वस्+शस्' यहां—

५६०–वसोः संप्रसारणम् ।। १५६ ।। अ० ६ । ४ । १३१ ।।

भसञ्ज्ञक वसुप्रत्ययान्त शब्दों को सम्प्रसारण हो ।

वकार को उ सम्प्रसारण और पूर्वरूप होकर—'विदुस्+शस्' इस अवस्था में वसु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो जाता है—विदुषः । विदुषा ।।

विद्वस्+भ्याम्—

५६१–वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ।। १५७ ।। अ० ८ । २ । ७२ ।।

---

१. नुम्—(उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ।। ७ । १ । ७०) नामिक—११३ ।।

२. दीर्घ—सान्तमहतः संयोगस्य ।। ६ । ४ । १०) नामिक—१२४ ।।

३. स् का लोप—(हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुति० ।। ६ । १ । ६८) नामिक—५० इस सूत्र से ।।

४. संगोगान्त लोप—(संयोगान्तस्य लोपः ।। ८ । २ । २३) नामिक—११४—इससे विद्वस् शब्द के सकार का लोप होता है ।।

वसुप्रत्ययान्त, स्रंसु, ध्वंसु और अनडुह, इन शब्दों के पदान्त सकार [तथा] हकार को दकारादेश हो ।

विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भिः ।।

विदुषे । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भ्यः । विदुषः । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भ्यः । विदुषः । विदुषोः । विदुषाम् । विदुषि । विदुषोः । विद्वत्सु । सम्बोधन में—हे विद्वन् ! हे विद्वांसौ ! हे विद्वांसः !

अब—**पर्णध्वस्**—

यह शब्द ध्वंसु धातु से बना है । इसको भी पदान्त में उक्त सूत्र से दकारादेश हो जाता है । जैसे—पर्णध्वत्; पर्णध्वद् । पर्णध्वसौ । पर्णध्वसः । पर्णध्वसम् । पर्णध्वसौ । पर्णध्वसः । पर्णध्वसा । पर्णध्वद्भ्याम् । पर्णध्वद्भिः । पर्णध्वसे । पर्णध्वद्भ्याम् । पर्णध्वद्भ्यः । पर्णध्वसः । पर्णध्वद्भ्याम् । पर्णध्वद्भ्यः । पर्णध्वसः । पर्णध्वसोः । पर्णध्वसाम् । पर्णध्वसि । पर्णध्वसोः । पर्णध्वत्सु ।।

इसी प्रकार—**उखास्रस्** आदि शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

ऊषिवस्–

यह क्वसुप्रत्ययान्त, सकारान्त शब्द है—ऊषिवान् । ऊषिवांसौ । ऊषिवांसः । उषिवांसम् । ऊषिवांसौ । ऊषुषः । ऊषुषा । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भिः । ऊषुषे । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भ्यः । ऊषुषः । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भ्यः । ऊषुषः । ऊषुषोः । ऊषुषाम् । ऊषुषि । ऊषुषोः । ऊषिवत्सु । हे ऊषिवन् ! हे ऊषिवांसौ ! हे ऊषिवांसः ! इसके प्रयोगों में सब कार्य्य 'विद्वस्' शब्द के समान होते हैं ।।

इसी प्रकार—**तस्थिवस्, पपिवस्, सेदिवस्, शुश्रुवस्, उपेयिवस्,** इत्यादि क्वसुप्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

एक प्रकार के सकारान्त शब्द ईयसुन्प्रत्ययान्त होते हैं। जैसे—**श्रेयस्, अल्पीयस्, पापीयस्, कनीयस्, यवीयस्,** इत्यादि। इन शब्दों के प्रयोग प्रथमा के एकवचन से लेकर पांच वचनों में 'विद्वस्' शब्द के समान होते हैं—

'यवीयस्+सु'=यवीयान् । यवीयांसौ । यवीयांसः । यवीयांसम् । यवीयांसौ । यवीयसः । यवीयसा । यवीयोभ्याम् । यवीयोभिः । यवीयसे । यवीयोभ्याम् । यवीयोभ्यः । यवीयसः । यवीयोभ्याम् । यवीयोभ्यः । यवीयसः । यवीयसोः । यवीयसाम् । यवीयसि । यवीयसोः । यवीयस्सु; यवीयःसु । हे यवीयन् ! इत्यादि ।।

इसी प्रकार ईयसुन्प्रत्ययान्त सब शब्दों के प्रयोग जानने उचित हैं ।।

ईयसुन् और क्वसुन्प्रत्ययान्त शब्दों जब स्त्रीलिङ्ग में आते हैं, तब ईकारान्त हो जाते हैं। जैसे—विदुषी, इत्यादि ।।

और असुन्प्रत्ययान्त अर्थात्—**अप्सरस्, उषस्, सुमनस्,** इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्द के प्रयोग 'चन्द्रमस्' शब्द के तुल्य होते हैं ।।

असुन्प्रत्ययान्त दो स्वर वाले शब्द प्रायः नपुंसकलिङ्ग में आते हैं। इनमें इतना भेद है कि—

पयस्—

'पयस्+सु' सु लोप होकर—पय । 'पयस्+औ' यहां औ के स्थान में शी[1] होकर—पयसी । 'पयस्+जस्' यहां भी जस् के स्थान में शि[2] और नुम्[3] का आगम [और दीर्घ*] होकर—पयांसि । फिर भी पयः । पयसी । पयांसि । अन्य प्रयोग 'चन्द्रमस्' शब्द के समान समझने चाहियें ।।

इसी प्रकार—**मनस्, भूयस्, पाथस्, वचस्, अम्भस्, एनस्,** इत्यादि शब्दों के प्रयोग विचारने योग्य हैं ।।

स्ववस्, स्वतवस्, इन दो सकारान्त शब्दों को वेदविषय में सु विभक्ति परे रहने पर नुम्[4] का आगम हो जाता है । जैसे—स्ववान् । स्वतवान् ।।

५६२–वा०–स्ववस्स्वतवसोर्मास उषसश्च छन्दसि त इष्यते ।। १५८ ।। अ० ७ । ४ । ४८ ।।

भकारादि प्रत्यय परे हों, तो वैदिक प्रयोग विषय में स्ववस्, स्वतवस्, मास्, उषस्, इन शब्दों को तकारादेश हो ।

जैसे—स्ववद्भिः । स्ववद्भ्यः । स्वतवद्भिः । स्वतवद्भ्यः । माद्भिः । उषद्भिः, इत्यादि ।।

---

१. औ को शी—(नपुंसकाच्च ।। ७ । १ । १९) नामिक—४२ ।।

२. जस् को शि—(जश्शसोः शिः ।। ७ । १ । २०) नामिक—४३ ।।

३. नुम्—(उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ।। ७ । १ । ७०) नामिक—११३ ।।

४. नुम्—(दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ।। ७ । १ । ८३) नामिक—१५५ ।।

* दीर्घ—सान्तमहतः संयोगस्य । अ. ६. ४. १० ।। नामिक-१२४ ।। सं०

एक प्रकार के सकारान्त शब्द इस्, उस्, प्रत्ययान्त होते हैं। जैसे—**वपुस्, यजुस्, अरुस्, धनुस्, आयुस्, ज्योतिस्, अर्चिस्, शोचिस्, बर्हिस्, हविस्, सर्पिस्,** इत्यादि सकारान्त शब्दों में कोई विशेष सूत्र नहीं घटते। और इन शब्दों के अन्त्य औपदेशिक सकार को पीछे मूर्द्धन्यादेश[1] हो जाता है। ये शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग में ही आते हैं, परन्तु लिङ्गानुशासन की रीति से **अर्चिस्** और **छदिस्** इन शब्दों के प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में भी होते हैं॥

सकारान्त नपुंसकलिङ्ग यजुस् शब्द—

'यजुस्+सु' यहां 'पयस्' शब्द के समान सब कार्य होकर—यजुः। यजुषी। यजूंषि। फिर भी—यजुः। यजुषी। यजूंषि। यजुषा। 'यजुस्+भ्याम्' यहां सकार को रु[2] होके अन्य कार्य्यों की प्राप्ति न होने से रेफ ऊपर चढ़ जाता है—यजुर्भ्याम् यजुर्भिः। यजुषे। यजुर्भ्याम्। यजुर्भ्यः। यजुषः। यजुर्भ्याम्। यजुर्भ्यः। यजुषः। यजुषोः। यजुषाम्। यजुषि। यजुषोः। यजुष्षु; यजुःषु॥

तथा इसन्त—**ज्योतिस्**—

ज्योतिः। ज्योतिषी। ज्योतींषि। फिर भी—ज्योतिः। ज्योतिषी। ज्योतींषि। ज्योतिषा। ज्योतिर्भ्याम्। ज्योतिर्भिः।

---

१. स् को मूर्द्धन्य ष्—(आदेशप्रत्यययोः॥ ८। ३। ५९) नामिक—३६॥

२. स् को रु—ससजुषो रुः॥ ८। २। ६६) नामिक—१६॥

ज्योतिषे। ज्योतिर्भ्याम्। ज्योतिर्भ्यः। ज्योतिषः। ज्योतिर्भ्याम्। ज्योतिर्भ्यः। ज्योतिषः। ज्योतिषोः। ज्योतिषाम्। ज्योतिषि। ज्योतिषोः। ज्योतिष्षु, ज्योतिःषु ॥

स्त्रीलिङ्ग में इतना भेद है कि—**छदिस्**—

छदिः। छदिषौ। छदिषः। फिर भी—छदिः। छदिषौ। छदिषः। आगे 'यजुस्' और 'ज्योतिस्' शब्द के समान जानो ॥

अथ षकारान्तविषयः।

षकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रावृष् शब्द—

'प्रावृष्+सु' यहां षकार को डकार[1] और विकल्प से चर्[2] होकर प्रावृट्, प्रावृड्। प्रावृषौ। प्रावृषः। प्रावृषम्। प्रावृषौ। प्रावृषः। प्रावृषा। प्रावृड्भ्याम्। प्रावृड्भिः। प्रावृषे। प्रावृड्भ्याम्। प्रावृड्भ्यः। प्रावृषः। प्रावृड्भ्याम्। प्रावृड्भ्यः। प्रावृषः। प्रावृषोः। प्रावृषाम्। प्रावृषि। प्रावृषोः। प्रावृषोः। प्रावृट्त्सु,। प्रावृट्सु ॥

इसी प्रकार—**विप्रुष्, त्विष्,** रुष्, इत्यादि शब्दों के प्रयोग जानने। और **ब्रह्मद्विष्** आदि पुँल्लिङ्ग शब्दों के प्रयोग भी 'प्रावृष्' शब्द के समान समझने चाहियें ॥

परन्तु **आशिष्** शब्द में कुछ विशेष है—

'आशिष्+सु' यहां धातु की उपधा के इक् को दीर्घ

१. ष् को ड्—(झलां जशोऽन्ते ॥ ८। २। ३९) सन्धि०—१८९ ॥

२. विकल्प से चर्—(वावसाने ॥ ८। ४। ५५) नामिक—११२ ॥

होकर—आशी: । आशिषौ । आशिषः । आशिषम् । आशिषौ । आशिषः । आशिषा । आशीर्भ्याम्[1] । आशीर्भिः । आशिषे । आशीर्भ्याम् । आशिर्भ्यः । आशिषः । आशीर्भ्याम्, इत्यादि ।।

सङ्ख्यावाची बहुवचनान्त षष् शब्द—

इससे बहुवचन विभक्ति ही आती है । 'षष्+जस्' 'षष्+शस्' यहां जस् और शस् का लुक्[2] [तथा पूर्ववत् षकार को डकार और विकल्प से टकार] होकर—षट् [षड्] । षट् [षड्] । षड्भिः । षड्भ्यः । षड्भ्यः । 'षष्+आम्' यहां नुट् का आगम[3] होकर—'षष्+नाम्' षकार को ड् हो के—'षड्नाम' । यहां अनाम्[4] इस प्रतिषेध से ष्टुत्वनिषेध न हुआ, किन्तु टवर्ग डकार से परे तवर्ग नकार को णकार और डकार को परसवर्ण होकर—षण्णाम् । षट्त्सु: षट्सु ।।

अथ हकारान्तविषयः ।।

हकारान्त पुँल्लिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग गोदुह् शब्द—

'गोदुह्+सु'—

५६३—दादेर्धातोर्घः ।। १५६ ।। अ० ८ । २ । ३२ ।।

---

१. यहां (हलि च ।। ८ । २ । ७७) नामिक—१४२ इससे दीर्घ होता है ।।

२. जस् शस् का लुक्—(षड्भ्यो लुक् ।। ७ । १ । २२) नामिक—१३९ ।।

३. नुट् आगम—(षट्चतुर्भ्यश्च ।। ७ । १ । ५५) नामिक—१४० ।।

४. 'अनाम्' यह प्रतिषेध (न पदान्ताट्टोरनाम् ।। ८ । ४ । ४१) सन्धि०—२१४ इस सूत्र के विषय से ।।

झल् परे हो, वा पदान्त में दकारादि धातु के हकार को घकारादेश हो।

यहां पदान्त में घकार होकर—

५६४—एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ॥ १६० ॥

अ० ८ । २ । ३७ ॥

स्, ध्व परे हों वा पदान्त में, धातु का जो एकाच् झषन्त अवयव उसका जो वश् उसको भष् आदेश हो।

यहां पदान्त में दकार को धकार होकर—'गोधुघ्+सु' घकार को जश् ग्[1] और उसको विकल्प चर्[2] होकर—गोधुक्, गोधुग् ॥

गोदुहौ। गोदुहः। गोदुहम्। गोदुहौ। गोदुहः। गोदुहा। गोधुग्भ्याम्। गोधुग्भिः। गोदुहे। गोधुग्भ्याम्। गोधुग्भ्यः। गोदुहः। गोधुग्भ्याम्। गोधुग्भ्यः। गोदुहः। गोदुहोः। गोदुहाम्। गोदुहि। गोदुहोः। गोधुक्षु। सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं होता।

गुडलिह्—

इस शब्द के प्रयोगों में इतना विशेष है कि हकार को घकारादेश नहीं होता—गुडलिट्, गुडलिड्। गुडलिड्भ्याम्। गुडलिट्त्सु, गुडलिट्सु ॥

---

१. घ् को जश् ग् (झलां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३९) सन्धि—१८९ ॥
२. विकल्प चर्—(वावसाने ॥ ८ । ४ । ५५) नामिक—११२ ॥

मित्रद्रुह, उन्मुह्, घृतस्निह्, उत्स्नुह्, इन चार **शब्दों में** विशेष यह है कि—

५६५–वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ।। १६१ ।।

अ० ८ । २ । ३३ ।।

जो झल् परे हो वा पदान्त हो, तो द्रुह्, मुह, स्नुह्, स्निह् ये जिन के अन्त में हो, उनको विकल्प करके घकारादेश हो ।

जिस पक्ष में घकार होता है, वहां 'गोदुह' शब्द के समान प्रयोग बनते हैं । और जहां हकार बना रहता है, वहां 'गुडलिह्' शब्द के समान प्रयोग समझने चाहियें ।।

नियतस्त्रीलिङ्ग उपानह् शब्द–

'उपानह्+सु' यहां—

५६६–नहो धः ।। १६२ ।। अ० ८ । २ । ३४ ।।

जो झल् परे हो वा पदान्त हो, तो नह् धातु के हकार को धकारादेश हो ।

धकार को दकार और विकल्प चर् होकर—उपानत्, उपानद् ।।

उपानहौ । उपानहः । उपानहम् । उपानहौ । उपानहः । उपानहा । उपानद्भ्याम् । उपानद्भिः । उपानहे । उपानद्भ्याम् । उपानद्भ्यः । उपानहः । उपानद्भ्याम् । उपानद्भ्यः । उपानहः । उपानहोः । उपानहाम् । उपानहि । उपानहोः । उपानत्सु ।।

इसी प्रकार—**परीणह** आदि शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें ।।

हकारान्त नियतपुंल्लिङ्ग अनडुह् शब्द–

'अनडुह् + सु'--

५६७–सावनडुहः ॥ १६३ ॥ अ० ७ । १ । ८२ ॥

जो सु विभक्ति परे हो, तो अनडुह् शब्द को नुम् का आगम हो ।

इससे नुम् और संयोगान्त लोप होकर—'अनडुन्' यहां आम् का आगम[1] सर्वनामस्थान विभक्तियों में अन्त्य अच् से परे होता है—'अनडु + आ + न्' यणादेश होकर—अनड्वान् ॥

अनड्वाहौ । अनड्वाहः । अनड्वाहम् । अनड्वाहौ । अनडुहः । अनडुहा । 'अनडुह् + भ्याम्' यहां हकार को दकारादेश[2] होकर—अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भिः । अनडुहे । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भ्यः । अनडुहः । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भ्यः । अनडुहः । अनडुहोः । अनडुहाम् । अनडुहि । अनडुहोः । अनडुत्सु ॥

[सम्बुद्धि में (अम् सम्बुद्धौ ॥ ७ । १ । ९९) इस सूत्र से अम् का आगम होकर—हे अनड्वन् ! हे अनड्वाहौ ! हे अनड्वाहः !

इति हलन्तप्रकरणम् ॥

---

१. आम् का आगम—(चतुरनडुहोरामुदात्तः ॥ ७ । १ । ९८) नामिक—१५० ॥

२. हकार को द्—(वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ॥ ८ । २ । ७२) नामिक—१५७ ॥

[अथ पादादि शब्द प्रकरणम्]

५६८–पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्–प्रभृतिषु ।। १६४ ।। अ० ६ । १ । ६३ ।।

इस सूत्र के यहां लिखने का प्रयोजन यह है कि इसमें जितने शब्द हैं, वे अकारान्तादि क्रमानुसार जहाँ जहाँ लिखे जाते हैं, वहाँ वहाँ यह सूत्र कई बार जनाना पड़ता, इसलिये यहां लिखा।

इसमें—**पाद, दन्त, मास, हृदय, उदक, आस्य,** इतने शब्द अकारान्त। **नासिका, निशा,** ये दो आकारान्त। **असृज्** यह जकारान्त। **यूष, दोष,** ये दो षकारान्त। **यकृत्, शकृत्** ये दो तकारान्त हैं।

सर्वनामस्थान को छोड़ के अन्य विभक्तियों में पाद आदि शब्दों के स्थान में निम्नलिखित आदेश विकल्प करके जानने चाहियें।

जैसे—**पाद** शब्द को 'पद्'—

'पद्+शस्=पदः। पदा। पद्भ्याम्। पद्भिः। पदे। पद्भ्याम्। पद्भ्यः। पदः। पद्भ्याम्। पद्भ्यः। पदः। पदोः। पदाम्। पदि। पदोः। पत्सु।।

दन्त शब्द को 'दत्'

दतः। दता। दद्भ्याम्। दद्भिः। दते। दद्भ्याम्। दद्भ्यः। दतः। दद्भ्याम्। दद्भ्यः। दतः। दतोः। दताम्। दति। दतोः। दत्सु।।

नासिका शब्द को 'नस्'—

नसः । नसा । नोभ्याम् । नोभिः नसे । नोभ्याम् । नोभ्यः । नसः । नोभ्याम् । नोभ्यः । नसः । नसोः । नसाम् । नसि । नसोः । नस्सु; नःसु ।।

मास शब्द को 'मास्' हलण्त आदेश—

मासः । मासा । 'मास्+भ्याम्' यहां (भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ।। ८ । ३ । १७) इस सूत्र[1] से अवर्णपूर्व रु को यकारादेश होकर (हलि सर्वेषाम् ।। ८ । ३ । २२) इस सूत्र[2] से यकार का लोप हो गया । जैसे—माभ्याम् । माभिः । मासे । माभ्याम् । माभ्यः । मासः । माभ्याम् । माभ्यः । मासः । मासोः । मासाम् । मासि । मासोः । मास्सुः माःसु ।।

और वेद में, भकारादि विभक्तियां परे हों तो इस हलन्त 'मास' शब्द के सकार को तकारादेश[3] हो जाता है । जैसे—माद्भ्याम् । माद्भिः । माद्भ्याम् । माद्भ्यः इत्यादि ।।

हृदय शब्द को 'हृद्'—

हृदः । हृदा । हृद्भ्याम् । हृद्भिः । हृदे । हृद्भ्याम् । हृद्भ्यः । हृदः । हृद्भ्याम् । हृद्भ्यः । हृदः । हृदोः । हृदाम् । हृदि । हृदोः । हृत्सु ।।

---

१. सन्धि०—२४८ ।।

२. सन्धि०—२५४ ।।

३. स् को त्—(स्ववःस्वतवसोर्मास उषसश्च छन्दसि त इष्यते ।। ७ । ४ । ४८) नामिक—१५८ ।। यह वार्तिक प्रथम [पूर्व] 'स्ववस्' शब्द पर लिख चुके हैं ।

निशा शब्द को 'निश्'—

निशः । निशा । 'निश्+भ्याम्' यहां शकार को ष्[1] और उसको डकारादेश[2] होकर—निड्भ्याम् । निड्भिः । निशे । निड्भ्याम् । निड्भ्यः । निशः । निड्भ्याम् । निड्भ्यः । निशः । निशोः । निशाम् । निशि । निशोः । निट्त्सु, निट्सु ॥

असृज् शब्द को 'असन्' आदेश—

अस्नः । अस्ना । असभ्याम् । असभिः । अस्ने । असभ्याम् । असभ्यः । अस्नः असभ्याम् । असभ्यः । अस्नः । अस्नोः । अस्नाम् । अस्नि; असनि[3] । अस्नोः । अससु ॥

यूष् शब्द को यूषन्; **दोष्** शब्द को दोषन्; **यकृत्** को यकन्; **शकृत्** को शकन्; **उदक्** को उदन्; **आस्य शब्द** को आसन् । 'यूषन्' आदि सब शब्दों के प्रयोग 'असन्' शब्द के समान जानो ॥

पाद, दन्त, मास, इन तीन शब्दों के प्रयोग दूसरे पक्ष में अकारान्त पुँल्लिङ्ग 'पुरुष' शब्द के समान । **हृदय, उदक, आस्य,** इन तीनों के अकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'धन' शब्द के समान

---

१. श् को ष्—(व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥ ८ । २ । ३६) नामिक—११९ ॥

२. ष् को ड्—(झलां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३९) सन्धि०—१८९ ॥

३. यहां (विभाषा ङिश्योः ॥ ६ । ४ । १३६) नामिक—७६ इस सूत्र से विकल्प करके अकार का लोप हो जाता है ॥

नासिका और निशा शब्द के प्रयोग 'कन्या' शब्द के समान **असृज्** शब्द के प्रयोग 'ऋत्विज्' शब्द के समान। **यूष्** शब्द के प्रयोग 'प्रावृष्' शब्द के समान। **दोष्** शब्द के प्रयोग 'आशिष्' शब्द के समान, और **यकृत्, शकृत्**, शब्द के प्रयोग 'उदश्वित्' शब्द के समान समझ लेने चाहियें ।।*

---

* [इस प्रकरण के "पद्दन्नो०" इस सूत्र की व्याख्या में संशोधकादि जन्य प्रमाद से गत संस्करणों में तीन स्थानों पर अशुद्ध पाठ छपे दीखते हैं—जैसे संवत् १९३८ के मुद्रित नामिक प्र० संस्करण पृष्ठ ४९ पंक्ति १५ में पाठ है:—पाद, दन्त, मास, हृदय, उदक, आसन ।।

संवत् २००६ के संस्करण पृष्ठ ५७ पंक्ति ६ में पाठ हो गया है:—पाद, दन्त, मास, हृदय, उदक, आसन, आस्य, अर्थात् आसन के आगे आस्य शब्द और जुड़ा मिलता है। हमने इस संस्करण पृष्ठ १२० पंक्ति ७ में शुद्ध पाठ केवल "आस्य" ही दिया है। पुनश्च सं० १९३८ के संस्क० पृ० ५० पंक्ति ९ तथा १६ में तथा सं० २००६ के संस्क० पृ० ५८ पंक्ति ११ तथा १९ में अशुद्ध पाठ "आसन" शब्द के स्थान पर क्रमशः "असृज्" तथा "आस्य" शुद्ध पाठ दे दिये हैं। देखिये पृ० १०४ पंक्ति क्रमशः ६ और १५ ।।

और जो काशिका में "आसन" शब्द को "आसन्" आदेश कहा है वह भी प्रामादिक ही जानना चाहिये, क्योंकि "आस्य" शब्द के स्थान पर "आसन्" आदेश होता है न कि आसन शब्द के स्थान पर ।।

[सम्पादक ।।]

[अथ सर्वनामप्रकरणम्]

अब इसके आगे सर्वनामवाची शब्द लिखेंगे। सर्वादि शब्द तीनों लिङ्गों में आते हैं।

प्रथम –**पुँल्लिङ्ग में सर्व**–

'सर्व+सु'=सर्वः। सर्वौ। 'सर्व+जस्'–

५६९–जसः शी ।। १६५ ।। अ० ७। १। १७ ।।

जो अकारान्त सर्वनाम से परे जस् होवे, तो उसको शी आदेश हो जावे।

शकार की इत्सञ्ज्ञा और पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होकर–सर्वे ।।

सर्वम्। सर्वौ। सर्वान्। सर्वेण। सर्वाभ्याम्। सर्वैः ।।
'सर्व+ङे'–

५७०–सर्वनाम्नः स्मै ।। १६६ ।। अ० ७। १। १४ ।।

जो अदन्त सर्वनाम से परे ङे विभक्ति होवे, तो उसको स्मै आदेश हो जावे ।।

जैसे–सर्वस्मै ।।

सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः। 'सर्व+ङसि'–

५७१–ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ।। १६७ ।।

अ० ७। १। १५ ।।

जो अकारान्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि विभक्ति हों तो इनको क्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश हों।

सर्वस्मात् ।।

'सर्व+ङस्' यहां स्य[1] आदेश होकर—सर्वस्य। 'सर्वयोः। 'सर्व+आम्'—

५७२–आमि सर्वनाम्नः सुट् ।। १६८ ।। अ० ७ । १ । ५२ ।।

जो अवर्णान्त सर्वनाम से परे आम् विभक्ति हो, तो उसको सुट् आगम हो ।

'सर्व+साम्' यहां अङ्ग को एकारादेश[2] और सट् के सकार को मूर्द्धन्यादेश[3] होकर—सर्वेषाम् ।।

'सर्व+ङि' उक्त सूत्र से 'ङि को स्मिन्' आदेश होकर—सर्वस्मिन् । सर्वयोः । सर्वेषु ।।

नपुंसकलिङ्ग में—सर्वम् । सर्वे । सर्वाणि फिर भी—सर्वम् सर्वे । सर्वाणि । आगे सब विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग के समान जानना ।।

स्त्रीलिङ्ग में—टाप् होकर अकारान्त सर्वादि सब शब्द आकारान्त होकर प्रयोग विषय में 'कन्या' शब्द के तुल्य होते हैं। जैसे—सर्वा । सर्वे । सर्वाः । सर्वाम् । सर्वे । सर्वाः । सर्वया । सर्वाभ्याम् । सर्वाभिः । 'सर्वा+ङे'—

---

१. स्य—(टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ ७ । १ । १२ ॥) नामिक—२५ इससे यह आदेश हुआ ॥

२. अ को ए—(बहुवचने झल्येत् ॥ ७ । ३ । १०३) नामिक—३२ ॥

३. स् को ष्—(आदेशप्रत्यययोः ॥ ८ । ३ । ५९) नामिक—३६ ॥

५७३–सर्वनाम्नः स्याड्ढ्स्वश्च ।। १६९ ।।

अ० ७ । ३ । ११४ ।।

जो सर्वादि आबन्त अङ्ग से परे ङित् विभक्ति हो, तो उसको स्याट् का आगम हो, और सर्वनाम को ह्रस्व भी हो जावे ।

'सर्व+स्या+ए' पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होकर सर्वस्यै । सर्वस्याः ।।

सर्वाभ्याम् । सर्वाभ्यः । सर्वस्याः । सर्वयोः । सर्वासाम् । 'सर्वस्या+ङि' यहां आबन्त से परे ङि विभक्ति को आम्[1] आदेश होकर सवर्णदीर्घ एकादेश हो जाता है—सर्वस्याम् । सर्वयोः । सर्वासु ।।

इसी प्रकार तीनों लिङ्गों में **विश्व** आदि गणपठित शब्दों के भी प्रयोग समझने चाहियें ।।

उभ शब्द नियतद्विवचन में आता है । इसकी सर्वनामसञ्ज्ञा का प्रयोजन अकच् प्रत्यय होना है । जैसे—उभकौ ।। उभौ । उभौ उभाभ्याम् । उभाभ्याम् । उभाभ्याम् । उभयोः । उभयोः ।।

उभय शब्द 'सर्व' शब्द के समान है जैसे—उभयः । उभयौ । उभये इत्यादि ।।

कतर, कतम, इतर, अन्य, अन्यतर, इन पांचों शब्दों के प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में कुछ विशेष होते हैं—

१. ङि विभक्ति को आम्—(ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ।। ७ । ३ । ११६) यह सूत्र प्रथम नामिक—५४ में लिख चुके हैं ।।

५७४–अदड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ।। १७० ।।

अ० ७ । १ । २५ ।।

जो डतर अर्थात् कतर आदि पांच नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान शब्दों से परे सु और अम् विभक्ति हों, तो इनके स्थान में अद्ड् आदेश हो।

जैसे—'कतर+सु' 'कतर+अम्' = कतरत्; कतरद् । इसी प्रकार—कतमत् । इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् ।।

इतर शब्द को वेद में कुछ विशेष है—

५७५–नेतराच्छन्दसि ।। १७१ ।। अ० ७ । १ । २६ ।।

वैदिक प्रयोगों में जो नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान इतर शब्द से परे सु और अम् विभक्ति होवें, तो उसकी [उनको] अद्ड् आदेश न हो।

जैसे—इतरम् । इतरम् ।।

५७६–वा०–एकतरात् सर्वत्र ।। १७२ ।। अ० ७ । १ । २६ ।।

सर्वत्र अर्थात् वेद और लोक में जो नपुंसकलिङ्गस्थ एकतर शब्द से परे सु और अस् विभक्ति हों, तो उनको अद्ड् न हो।

जैसे—एकतरं तिष्ठति । एकतरं पश्य ।।

त्व शब्द अन्य का पर्यायवाची है, इसमें कुछ विशेष नहीं ।।

नेम शब्द में विशेष यह है कि—

५७७–प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च ।। १७३ ।।

अ० १ । १ । ३२ ।।

जो जस् विभक्ति परे रहने पर प्रथम, चरम, तयप्प्रत्ययान्त अल्प, अर्द्ध कतिपय नेम, ये शब्द हों तो इनकी सर्वनामसञ्ज्ञा विकल्प करके हो ।

नेम शब्द का सर्वदिगण में पाठ होने से प्राप्तविभाषा है । प्रथमादिकों की सर्वनाम सञ्ज्ञा में अपूर्वविधान विकल्प है इसलिये जिस पक्ष में सर्वनामसञ्ज्ञा होती है, वहां सर्व शब्द के समान जस् विभक्ति के स्थान में शी आदेश हो जाता है और जहाँ सर्वनामसञ्ज्ञा नहीं होती, वहां पुरुष शब्द के तुल्य प्रयोग जस् विभक्ति में भी होते हैं । जैसे—

प्रथमे, प्रथमाः । चरमे, चरमाः । तयप्प्रत्ययान्त—द्वितये, द्वितयाः । त्रितये, त्रितयाः । अर्द्धे, अर्द्धाः । कतिपये, कतिपयाः । नेमे, नेमाः । आगे प्रथमादि शब्दों के समान और नेम शब्द के 'सर्व' शब्द के समान समझने चाहिये ।।

सम और **सिम** शब्दों के कुछ विशेष प्रयोग नहीं किन्तु सर्व शब्द के समान ही हैं ।।

५७८-पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसञ्ज्ञायाम्

।। १७४ ।। अ० १ । १ । ३३ ।।

जस् विभक्ति परे पर रहने पर सञ्ज्ञाभिन्न व्यवस्था में पूर्व, पर, अवर दक्षिण, उत्तर अपर, अधर, ये शब्द हों तो इनकी सर्वनामसञ्ज्ञा विकल्प करके हो, और अन्यत्र तो नित्य ही हो जावे ।

जैसे—पूर्वेषाम्। प्रथमादि शब्दों के समान इनके भी रूप होते हैं। जैसे—पूर्वे, पूर्वाः। परे, पराः। अवरे, अवराः। दक्षिणे, दक्षिणाः। उत्तरे, उत्तराः। अपरे, अपराः। अधरे, अधरा। और जहां सञ्ज्ञा और व्यवस्था अर्थ होगा, वहां तो पूर्वादिकों की सर्वनामसञ्ज्ञा ही न होगी और 'पुरुष' शब्द के समान प्रयोग होंगे॥

५७९—स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्॥ १७५॥ अ० १। १। ३४॥

जस् विभक्ति परे हो, तो ज्ञाति अर्थात् बन्धु और धन के पर्यायवाची स्व शब्द को छोड़ के अन्य अर्थों में इसकी सर्वनामसञ्ज्ञा विकल्प करके हो।

स्वे पुत्राः, स्वाः पुत्राः। स्वे पितरः, स्वाः पितरः। इसके अन्य सब प्रयोग 'सर्व' शब्द के समान जानो। और जहाँ जाति और धन के वाची स्व शब्द की सर्वनाम सञ्ज्ञा नहीं होती, वहाँ 'पुरुष' शब्द के समान प्रयोग हो जाते हैं॥

५८०—अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः॥ १७६॥

अ० १। १। ३५॥

बहिर्योग जो कुछ अलग हो और उपसंव्यान जो मिला हो। बहिर्योग और उपसंव्यान अर्थ में जस् विभक्ति परे हो तो अन्तर् शब्द की सर्वनामसञ्ज्ञा विकल्प करके हो।

अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः; अन्तरे, अन्तरा वा शाटकाः॥

सर्वनामवाची पूर्वादि नव शब्दों में जो विशेष है सो लिखते हैं—

५८१–पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ॥ १७७ ॥ अ० ७ । १ । १६ ॥

पूर्वादि नव शब्दों से परे जो ङसि और ङि विभक्ति हों, तो उनके स्थान में स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प करके हों ।

जिस पक्ष में उक्त आदेश नहीं होते वहां 'पुरुष' शब्द के समान रूप हो जाते हैं जैसे—पूर्वस्मात्, पूर्वात् । पूर्वस्मिन्, पूर्वे । परस्मात्, परात् । परस्मिन्, परे । अवरस्मात्, अवरात् । अवरस्मिन्, अवरे । दक्षिणस्मात्, दक्षिणात् । दक्षिणस्मिन्, दक्षिणे । उत्तरस्मात्, उत्तरात् । उत्तरस्मिन् उत्तरे । अपरस्मात्, अपरात् । अपरस्मिन्, अपरे । अधरस्मात् अधरात् । अधरस्मिन्, अधरे । स्वस्मात्, स्वात् । स्वस्मिन्, स्वे । अन्तरस्मात्, अन्तरात् । अन्तरस्मिन्, अन्तरे ॥

अब इसके आगे सर्वाद्यन्तर्गत त्यदादि शब्दों के भी प्रयोग तीनों लिङ्गों में दिखलाते हैं ।

पुँल्लिङ्ग त्यद् शब्द–

'त्यद्+सु'—

५८२–त्यदादीनामः ॥ १७८ ॥ अ० ७ । २ । १०२ ॥

जो सु आदि विभक्ति परे हों, तो त्यादि शब्दों के अन्त को अकारादेश हो ।

यहां दकार को अकार और दोनों अकार को [पररूप][1] एकादेश होकर—'त्य+सु' इस अवस्था में—

५८३–तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥ १७९ ॥

अ० ७ । २ । १०६ ॥

१. अतो गुणे । अ० ६ । १ । ९७ ॥ सम्पा० ॥

सु विभक्ति परे हो, तो त्यदादि शब्दों के आदि वा मध्य में जो तकार दकार है, उनको सकारादेश हो।

जैसे—स्यः—

त्यौ। त्ये। त्यम्। त्यौ। त्यान्। त्येन। त्याभ्याम्। त्यैः। त्यस्मै। त्याभ्याम्। त्येभ्यः। त्यस्मात्। त्याभ्याम्। त्येभ्यः। त्यस्य। त्ययोः। त्येषाम्। त्यस्मिन्। त्ययोः। त्येषु॥

नपुंसकलिङ्ग त्यद् शब्द—

'त्यद्+सु' यहां सु और अम् का लुक्[1] होने से अनन्त्य तकार को सकारादेश नहीं होता—त्यत्, त्यद्। त्ये। त्यानि। फिर भी—त्यत्, त्यद्। त्ये। त्यानि। आगे '**सर्व**' शब्द के समान जानो॥

स्त्रीलिङ्ग त्यद् शब्द—

'त्यद्+सु' यहाँ विभक्ति विषय मानकर अकारादेश[2] होके अकारान्त से टाप्[3] हो जाता है—'त्या+सु' पीछे आदि तकार को सकार होकर—स्या। त्ये। त्याः। त्याम्। त्ये। त्याः। त्यया। त्याभ्याम्। त्याभिः। त्यस्यै[4]। त्याभ्याम्। त्याभ्यः। त्यस्याः। त्याभ्याम्। त्याभ्यः। त्यस्याः। त्ययोः। त्यासाम्। त्यस्याम्। त्ययोः। त्यासु॥

---

१. सु अम् का लुक् (स्वमोर्नपुंसकात्।। ७। १। २३) नामिक-७२॥

२. अकारादेश—(त्यदादीनामः।। ७। २। १०२) नामिक—१७८॥

३. अकारान्त से टाप्—(अजाद्यतष्टाप्॥ ४। १। ४) [स्त्रै० ता० २]॥

४. स्याट् का आगम—[सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च॥ ७। ३। ११४] नामिक—१६९॥

पुँल्लिङ्ग तद् शब्द—

सः । तौ । ते । तम् । तौ । तान् । तेन । ताभ्याम् । तैः । तस्मै । ताभ्याम् । तेभ्यः । तस्मात् । ताभ्याम् । तेभ्यः । तस्य । तयोः । तेषाम् । तस्मिन् । तयोः तेषु ।।

नपुंसकलिङ्ग तद् शब्द–

तत्, तद् । ते । तानि । फिर भी—तत्, तद् । ते । तानि । आगे पुँल्लिङ्ग के समान ।।

स्त्रीलिङ्ग तद् शब्द–

सा । ते । ताः । ताम् । ते । ताः । तया । ताभ्याम् । ताभिः । तस्यै । ताभ्याम् । ताभ्यः । तस्याः । ताभ्याम् । ताभ्यः । तस्यः । तस्याः । तयोः । तासाम् । तस्याम् । तयोः । तासु ।।

यहां तीनों लिङ्गों में 'त्यद्' शब्द के समान सूत्र लगते हैं। तथा 'यद्' शब्द में भी कुछ विशेष नहीं ।।

पुँल्लिङ्ग यद् शब्द—

यः । यौ । ये । यम् । यौ । यान् । येन । याभ्याम् । यैः । यस्मै । याभ्याम् । येभ्यः । यस्मात् । याभ्याम् । येभ्यः । यस्य । ययोः । येषाम् । यस्मिन् । ययोः । येषु ।।

नपुंसकलिङ्ग यद् शब्द—

यत् यद् । ये । यानि । फिर भी—यत्, यद् । ये । यानि । अन्य प्रयोग पुंल्लिङ्ग के समान जानने चाहियें ।।

स्त्रीलिङ्ग यद् शब्द—

या । ये । याः । याम् । ये । याः । यया । याभ्याम् ।

याभिः । यस्यै । याभ्याम् । याभ्यः । यस्याः । याभ्याम् । याभ्यः । यस्याः । ययोः । यासाम् । यस्याम् । ययोः यासु ॥

पुँल्लिङ्ग एतद् शब्द–

'एतद्+सु' यहां 'एतद्' शब्द के मध्य तकार को सकारादेश[1] होकर—मूर्द्धन्य षकारादेश हो जाता है–एषः । एतौ । एते ॥

५८४–द्वितीयाटौस्स्वेनः ॥ १८० ॥ अ० २ । ४ । ३४ ॥

अन्वादेश विषय में द्वितीया, टा और ओस् विभक्ति परे हों, तो इदम् और एतत् शब्द को 'एन' आदेश हो ।

'अन्वादेश' उसको कहते हैं कि जहाँ एक वाक्य में किसी शब्द को कह कर विषयान्तर प्रकाशित करने के लिये उसी शब्द को दूसरे वाक्य में कहें । जैसे—एतं बालं शिक्षामपीपठः; अथो एनं वेदमध्यापय । एनौ । एनान् । एतेन बालेन रात्रिरधीता; अथो एनेनाहरप्यधीतम् । एतयोर्बालयोः शोभनं शीलम्; अथो एनयोः कुशाग्रा मेधा; यहां तीनों जगह उत्तर उत्तर वाक्य में एनादेश हुआ है ।

परन्तु केवल 'एतद्' शब्द के प्रयोगों में कुछ विशेष न होगा—

एतम् एतौ । एतान् । एतेन । एताभ्याम् । एतैः । एतस्मै । एताभ्याम् । एतेभ्यः । एतस्मात् । एताभ्याम् । एतेभ्यः । एतस्य । एतयोः । एतेषाम् । एतस्मिन् । एतयोः । एतेषु ॥

---

१. तकार को सकार—(तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥ ७ । २ । १०६) नामिक—१७९ ॥

नपुंसकलिङ्ग एतद् शब्द–

एतत्, एतद् । एते । एतानि । फिर भी—एतत्, एतद् । एते । एतानि । अन्य प्रयोग पूर्व के समान जानना ।।

स्त्रीलिङ्ग एतद् शब्द–

एषा । एते । एताः । एताम् । एते । एताः । एतया । एताभ्याम् । एताभिः । एतस्यै । एताभ्याम् । एताभ्यः । एतस्याः । एताभ्याम् । एताभ्यः । एतस्याः । एतयोः । एतासाम् । एतस्याम् । एतयोः । एतासु ।।

पुँल्लिङ्ग इदम् शब्द–

'इदम्+सु'—

५८५–इदमो मः ।। १८१ ।। अ० ७ । २ । १०८ ।।

सु विभक्ति परे हो, तो इदम् शब्द के मकार को मकार ही आदेश हो, अर्थात् त्यदादिकों को जो अकारादेश कहा है, सो न हो ।

५८६–इदोऽय् पुंसि ।। १८२ ।। अ० ७ । २ । १११ ।।

सु विभक्ति परे हो, तो पुँल्लिङ्ग विषय में इदम् शब्द के इद् भाग को अय् आदेश हो ।

'अय्+अम्+स्' हल्ङ्यादिलोप होकर—अयम् ।

'इदम्+औ' यहाँ आकारादेश[1] होकर—'इद+औ'—

५८७–दश्च ।। १८३ ।। अ० ७ । २ । १०९ ।।

---

१. अकारादेश—(त्यदादीनामः ।। ७ । २ । १०२) नामिक—१७८ ।।

विभक्ति परे हो तो इदम् शब्द के दकार को मकारादेश हो ।

'इम+औ' यहां पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होकर--इमौ । 'इम+जस्' सर्व शब्द के समान—इमे । इमम् । इमौ । इमान् ।।

'इदम्+टा' यहां भी मकार को अकारादेश और [पररूप] एकादेश[1] होकर—

५८८--अनाप्यकः ।। १८४ ।। अ० ७ । २ । ११२ ।।

आप् अर्थात् टा और ओस् विभक्ति परे हों, तो ककारभिन्न इदम् शब्द के इद् भाग को अन आदेश हो ।।

टा के स्थान में इन होकर—अनेन ।

'ककारभिन्न' कहने का प्रयोजन यह है कि—'इमकेन' यहां अन आदेश न हो । अगले सूत्र में हल् ग्रहण के होने से इस सूत्र करके अन आदेश अजादि विभक्तियों में होता है, सो तृतीयादि अजादि विभक्तियों में भी टा और ओस् के परे ही जानना चाहिये, अन्यत्र नहीं । [क्योंकि अन्य सब विभक्तियाँ आदेश या आगम के कारण हलादि हो जाती हैं] ।।

'इद्+भ्याम्'—

५८९--हलि लोपः ।। १८५ ।। अ० ७ । २ । ११३ ।।

तृतीयादि हलादि विभक्ति परे हों, तो इदम् शब्द के इद् भाग का लोप हो ।

'अ+भ्याम्' अदन्त अङ्ग को दीर्घ[2] होकर—आभ्याम् ।।

---

१. एकादेश—(अतो गुणे ।। ६ । १ । ९७) ।।

२. अदन्त अङ्ग को दीर्घ—(सुपि च ।। ७ । ३ । १०२) नामिक—२८ ।।

'अ+भिस्' यहां भी अदन्त शब्दों के समान भिस् विभक्ति को ऐस् आदेश प्राप्त है, इसलिये—

५६०--नेदमदसोरकोः ।। १८६ ।। अ० ७ । १ । ११ ।।

जो ककारभिन्न इदम् और अदस् शब्द से परे भिस् विभक्ति हो, तो उसको ऐस् आदेश न हो ।

फिर एकारादेश[1] होकर—एभिः । 'ककारभिन्न' इसलिये कहा है कि—इमकैः । अमुकैः ।।

अस्मै । आभ्याम् । एभ्यः । अस्मात् । आभ्याम् । एभ्यः । अस्य । 'इदम्+ओस्' यहां भी पूर्वसूत्र से 'अन' आदेश होकर—अनयोः । एषाम् । अस्मिन् । अनयोः । एषु ।।

जब **इदम्** शब्द अन्वादेश, में आता है, तब कुछ प्रयोग विशेष होते हैं—

५६१--इदमो ऽन्वादेशे ऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ।। १८७ ।।
अ० २ । ४ । ३२ ।।

अन्वादेश विषय में तृतीयादि विभक्ति परे हो, तो इदम् शब्द के स्थान में अनुदात्त अश् आदेश हो ।

अन्वादेश के भी रूप जैसे पूर्व लिख चुके वैसे ही होंगे, परन्तु स्वर में भेद होगा । जहां तृतीयादि हलादि विभक्तियों में इद्भाग का लोप होगा, वहां—**आभ्याम् । अस्मै,** ऐसा स्वर

---

१. एकारादेश—(बहुवचने झल्येत् ।। ७ । ३ । १०३) नामिक—३२ ।।

होगा। और जहां अन्वादेश में अश् आदेश होगा, वहां—
आभ्याम्। अस्मै, ऐसा होगा ।।

(द्वितीयाटौस्स्वेनः ।। २ । ४ । ३४) इस उक्त (ना० १८०) सूत्र से द्वितीया, टा, ओस् इन तीन विभक्तियों में जैसे 'एतत्' शब्द को उत्तर वाक्य में 'एन' आदेश और पूर्व वाक्य में एतत् शब्द का प्रयोग आता है, वैसे यहाँ भी पूर्व वाक्य में 'इदम्' शब्द का प्रयोग और उत्तर वाक्य में 'अश्' आदेश का प्रयोग किया जाता है ।।

नपुंसकलिङ्ग इदम् शब्द—

इसमें इतना विशेष है कि इदम् के मकार को अ और सु विभक्ति को अम् होके—इदम्। इमे। इमानि। फिर भी—इदम्। इमे। इमानि। आगे पुँल्लिङ्ग के सदृश प्रयोग होंगे ।।

स्त्रीलिङ्ग इदम् शब्द—

'इदम्+सु' यहां अकारादेश का निषेध होकर—

५९२--यः सौ ।। १८८ ।। अ० ७। २। ११० ।।

सु विभक्ति परे हो, तो इदम् शब्द के दकार को यकारादेश होवे।

इयम्। आगे इसको अदन्त के होने से टाप् होकर 'कन्या' शब्द के समान जानो। जैसे—इमे। इमाः। इमाम्। इमे। इमाः। 'इद+टा' अन[1] आदेश होके—अनया। यहां भी 'भ्याम्'

---

१. इट् को अन्—(अनाप्यकः ।। ७। २। ११२) नामिक—१७४ ।।

आदि तृतीयादि हलादि विभक्तियों में इद् भाग का लोप[1] हो जाता है—आभ्याम् । आभिः । अस्यै । आभ्याम् । आभ्यः । अस्याः । आभ्याम् । आभ्यः । अस्याः । अनयोः । आसाम् । अस्याम् । अनयोः । आसु ॥

पुँल्लिङ्ग अदस् शब्द–

'अदस्+सु'—

५६३--अदस औ सुलोपश्च ॥ १८९ ॥ अ० ७ । २ । १०७ ॥

जो सु विभक्ति परे हो, तो अदस् शब्द के सकार को औ आदेश और सु विभक्ति का लोप हो जावे ।

'अद+औ' यहां दकार को सकारादेश[2] होकर—असौ ॥

'अदस्+औ' यहां से आगे औ आदि विभक्तियों में अकारादेश[3] होकर 'अद' शब्द सर्वत्र रह जाता है । 'अद+औ—

५६४–अदसोऽसेर्दादु दो मः ॥ १९० ॥ अ० ८ । २ । ८० ॥

सकार भिन्न अदस् शब्द के दकार से परे अवर्ण को उवर्ण आदेश और उसके दकार को मकारादेश हो जावे ।

---

१. इद् भाग का लोप—(हलि लोपः ॥ ७ । २ । ११३) नामिक—१८५ ॥

२. दकार को स्—(तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥ ७ । २ । १०६) नामिक—१७९ ॥

३. अकारादेश—(त्यदादीनामः ॥ ७ । २ । १०२) नामिक—१७८ ॥

'अमु+औ' यहां पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होके—अमू ।।

'अद्+दस्' यहां 'सर्व' शब्द के समान अदन्त सर्वनाम से परे जस् को शी और पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होकर—'अदे' यहाँ—

५९५–एत ईद्बहुवचने ।। १९१ ।। अ० ८ । २ । ८१ ।।

अदस् शब्द के दकार से परे जो एकार उसको ईकारादेश और दकार को मकारादेश हो बहुवचन में ।

अमी ।।

'अमु+अम्' = अमुम् । अमू । अमुन् । अमुना । अमूभ्याम् । 'अदस्+भिस्' यहां भिस् की ऐस् का निषेध[1] एकार को बहुवचन में ईकार और दकार को मकारादेश होकर—अमीभिः ।।

अमुष्मै । अमूभ्याम् । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमूभ्याम् । अमीभ्यः । अमुष्य । अमुयोः । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमुयोः । अमीषु ।।

नपुंसकलिङ्ग अदस् शब्द–

'अदस्+सु' यहां सु और अम् का लुक्[2] सकार को रुत्व[3]

---

१. भिस् को ऐस् का निषेध—(नेदमदसोरकोः । ७ । १ । ११) नामिक—१८६ ।।

२. सु और अम् का लुक्—(स्वमोर्नपुंसकात् ।। ७ । १ । २३) नामिक—७२ ।।

३. स् को रू—(ससजुषो रुः ।। ८ । २ । ६६) नामिक—१६ ।।

और रू को विसर्जनीय होके—अदः । 'अमु+औ'=अमू । अमूनि । फिर भी—अदः । अमू । अमूनि । आगे पुँल्लिङ्ग के समान जानो ।।

स्त्रीलिङ्ग अदस् शब्द–

'अदस्+सु' पूर्ववत्—असौ' । 'अदा+औ' इस अवस्था में वृद्धि एकादेश, दकार से परे औकार को दीर्घ ऊकार और दकार को मकारादेश होकर—अमू । अमूः । अमूम् । अमू । अमूः । 'अदा+टा' यहां आकार को एकार और उसको अय् आदेश होकर—'अदया' इस अवस्था में दकार से परे अकार को उकार और दकार को मकारादेश होकर—अमुया । अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमूष्याः । अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुष्याः । अमुयोः । अमूषाम् । अमुष्याम् । अमुयोः अमूषु ।।

सर्वनाम पुँल्लिङ्ग एक शब्द–

एकः । एकौ । एके । एकम् । एकौ । एकान् । एकेन । एकाभ्याम् । एकैः । एकस्मै । एकाभ्याम् । एकेभ्यः । एकस्मात् । एकाभ्याम् । एकेभ्यः । एकस्य । एकयोः । एकेषाम् । एकस्मिन् । एकयोः । एकेषु ।।

नपुंसकलिङ्ग में—एकम् । एके । एकानि । फिर भी—एकम् । एके । एकानि । आगे पुँल्लिङ्ग के समान ।।

स्त्रीलिङ्ग एक शब्द–

'सर्वा' शब्द के समान । जैसे—एका । एके । एकाः । एकाम् । एके । एकाः । एकया । एकाभ्याम् । एकाभिः । एकस्यै ।

एकाभ्याम् । एकाभ्यः । एकस्याः । एकाभ्याम् । एकाभ्यः । एकस्याः । एकयोः । एकासाम् । एकस्याम् । एकयोः । एकासु ।।

पुंल्लिङ्ग सङ्ख्यावाची द्वि शब्द–

इस शब्द के नियत द्विवचनान्त ही प्रयोग किये जाते हैं । 'द्वि+औ' त्यदादिकों में होने से अकारादेश होकर वृद्धि एकादेश हो जाता है—द्वौ । द्वौ । 'द्वि+भ्याम्' अकारादेश और दीर्घ होकर—द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः ।।

नपुंसक और **स्त्रीलिङ्ग** में प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में—द्वे । द्वे । ऐसे प्रयोग होंगे । आगे पुँल्लिङ्ग के तुल्य जानो ।।

सर्वनामवाची युष्मद् और अस्मद् शब्द–

इन दोनों शब्दों के तीनों लिङ्गों और सातों विभक्तियों में एक प्रकार के प्रयोग होते हैं । इसलिये इनके प्रयोग साथ साथ ही लिखते हैं—

'युष्मद्+सु । अस्मद्+सु'—

५९६–मपर्यन्तस्य ।। १६२ ।। अ० ७ । २ । ९१ ।।

यह अधिकार सूत्र है । यहां से आगे युष्मद् और अस्मद् शब्द को जो आदेश कहें, वे मपर्यन्त को हों ।

५९७–त्वाहौ सौ ।। १६३ ।। अ० ७ । २ । ९४ ।।

जो सु विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से त्व और अह आदेश हों ।

युष्म्, अस्म् को आदेश होकर—'त्व+अद्+सु। अह+अद्+सु'।

५९८--शेषे लोपः ॥ १९४ ॥ अ० ७।२।९०॥

शेष अर्थात् [जिन विभक्तियों में युष्मद्—अस्मद् को आत्व और यत्व आदेश होते हैं, उनसे जो बची हुई विभक्तियाँ हैं वहां] जो [युष्मद्—अस्मद् का] अद् भाग है, उसका लोप हो।

जैसे—'त्व+सु। अह+सु'।

५९९--ङे प्रथमयोरम् ॥ १९५ ॥ अ० ७।१।२८॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे जो ङे और प्रथमा, द्वितीया विभक्ति हों, उनके स्थान में अम् आदेश हो।

जैसे—'त्व+अम्'। अह+अम्। पूर्वरूप एकादेश होकर—त्वम्। अहम्॥

'युष्मद्+औ। अस्मद्+औ'—

६००--युवावौ द्विवचने ॥ १९६ ॥ अ० ७।२।९२॥

द्विवचन विभक्तियाँ परे हों तो युष्मद् अस्मद् शब्दों के मपर्य्यन्त के स्थान में क्रम से युव, आव आदेश हों।

'युव+अद्+औ। आव+अद्+औ'। अद् भाग का लोप होके—'युव+औ। आव+औ'।

६०१--प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ॥ १९७ ॥
अ० ७।२।८८

जो भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोग विषय में प्रथमा विभक्ति का द्विवचन परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्द को आकारादेश हो।

जैसे—युवाम् । आवाम् । 'भाषा' के कहने से वेद में आकारादेश नहीं होता—युवम्* । आवम् ऐसे ही प्रयोग होते हैं ।।

'युष्मद+जस् । अस्मद्+जस्'—

६०२–यूयवयौ जसि ।। १९८ ।। अ० ७ । २ । ९३ ।।

जो जस् विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से यूय, वय आदेश हों ।

शेष अद् भाग का लोप और जस् को अम् आदेश[1] होकर—यूयम् । वयम् ।।

'युष्मद्+अम् । अस्मद्+अम्'—

६०३–त्वमावेकवचने ।। १९९ ।। अ० ७ । २ । ९७ ।।

एकवचन विभक्तियों में युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से त्व, म आदेश हों ।

'त्व+अद्+अम् । म+अद्+अम्'—

६०४–द्वितीयायां च ।। २०० ।। अ० ७ । २ । ८७ ।।

द्वितीया विभक्ति में युष्मद् अस्मद् शब्दों को आकारादेश हो ।

अन्त्य दकार को अकार और दोनों को स्वर्णदीर्घ एकादेश होकर—त्वाम् । माम् ।।

---

१. जस् को अम् आदेश—(ङे प्रथमयोरम् ।। ७ । १ । २८) नामिक—१९५ ।।

* **[युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे (ऋ० १ । १५२ । १)]**—सं.

'युष्मद्+औ अस्मद्+औ' यहां मपर्य्यन्त को युव आव, दकार को आकार, औ के स्थान में अम् और पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होकर—युवाम् । आवाम् ॥

'युष्मद्+शस् । अस्मद्+शस्' यहां भी दकार को आकार और स्वर्णदीर्घ एकादेश होके—

६०५–शसो न ॥ २०१ ॥ अ० ७ । १ । २९ ॥

'युष्मद् अस्मद् शब्द से परे जो शस्, उस को नकारादेश[1] हो ।

जैसे—युष्मान् । अस्मान् ॥

'युष्मद्+टा । अस्मद्+टा' यहां एकवचन के युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को त्व, म आदेश होके—त्व+अद्+टा । म+अद्+टा' ।

६०६–योऽचि ॥ २०२ ॥ अ० ७ । २ । ८९ ॥

अनादेश अर्थात् जिसको कोई आदेश न हुआ हो वह, अजादि विभक्ति परे हो तो युष्मद्, अस्मद् शब्द को यकारादेश हो ।

अन्त्य दकार को य् और [त्व के अकार तथा पर] अकार को पररूप एकादेश होकर—त्वया । मया ।

द्विवचन में—'युव+अद्+भ्याम् । आव+अद्+भ्याम्' यहां—

६०७–युष्मदस्मदोरनादेशे ॥ २०३ ॥ अ० ७ । २ । ८६ ॥

---

१. यहां (आदेः परस्य ॥ १ । १ । ५३) इससे शस् के आकार स्थान पर नकारादेश होकर (संयोगान्तस्य लोपः ॥ ८ । २ । २३) से सकार का लोप होता है ॥

जिसको कोई आदेश न हुआ हो वह हलादि विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्द को आकारादेश हो।

दकार को आकार और दीर्घ एकादेश होके—युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। युष्माभिः। अस्माभिः॥

'युष्मद्+ङे'। अस्मद्+ङे'—

६०८–तुभ्यमह्यौ ङयि॥ २०४॥ अ० ७। २। ९५॥

ङे विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को तुभ्य और मह्य आदेश क्रम से हों।

विभक्ति को अम्[1] आदेश और अद् भाग का लोप होके—तुभ्यम्। मह्यम्॥

युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। 'युष्मद्+भ्यस्। अस्मद्+भ्यस्'—

६०९–भ्यसोऽभ्यम्॥ २०५॥ अ० ७। १। ३०॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे भ्यस् विभक्ति को अभ्यम् आदेश हो।

अद्भाग का लोप होकर—युस्मभ्यम्। अस्मभ्यम्॥

'युष्मद्+ङसि। अस्मद्+ङसि' यहां एकवचन में मपर्य्यन्त को त्व, म आदेश और अद्भाग का लोप होकर—

६१०–एकवचनस्य च॥ २०६॥ अ० ७। १। ३२॥

जो युष्मद् अस्मद् से परे पञ्चमी विभक्ति का एकवचन हो, तो उसको अत् आदेश हो।

---

१. विभक्ति को अम्—(ङे प्रथमयोरम्॥ ७। १। २८) नामिक—१९५॥

'त्व+अत् । म+अत्' । पररूप[1] एकादेश होकर—त्वत् । मत् ॥

युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । 'युष्मद्+भ्यस् । अस्मद्+भ्यस्' यहां अद्भाग का लोप होके—

६११–पञ्चम्या अत् ॥ २०७ ॥ अ० ७ । १ । ३१ ॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्द से परे पञ्चमी विभक्ति का भ्यस् हो, तो उसको अत् आदेश हो ।

पररूप एकादेश होके—युष्मत् । अस्मत् ॥

'युष्मद्+ङस् । अस्मद्+ङस्'—

६१२–तवममौ ङसि ॥ २०८ ॥ अ० ७ । २ । ९६ ॥

ङस् विभक्ति परे हो तो युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को तव और मम आदेश हों ।

यहां भी अद्भाग का लोप होकर—'तव+ङस् । मम+ङस्' ।

६१३–युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ॥ २०९ ॥

अ० ७ । १ । २७ ॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे ङस् विभक्ति हो, तो उसको अश् आदेश होवे ।

अश् आदेश में 'शकार' इसलिये है कि ङस्मात्र के स्थान में अकार हो जावे । पररूप एकादेश होके—तव । मम ॥

---

१. पररूप—(अतो गुणे ॥ ६ । १ । ९७) ॥

युष्मद्+ओस् । 'अस्मद्+ओस्' यहां भी द्विवचन में मपर्यन्त को युव आव, और दकार को यकारादेश[1] होकर—युवयोः । आवयोः ।।

'युष्मद्+आम् । अस्मद्+आम्' यहां सर्वनामसञ्ज्ञा के होने से सुट्[2] और अद् भाग का लोप होकर—

६१४—साम आकम् ।। २१० ।। अ० ७ । १ । ३३ ।।

जो युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे सुट्सहित षष्ठी का बहुवचन आम् विभक्ति हो, तो उसको 'आकम्' आदेश हो ।

फिर एकादेश होकर—युष्माकम् । अस्माकम् ।।

'युष्मद्+ङि । अस्मद्+ङि' यहां भी एकवचन में मपर्यन्त को त्व, म और दकार को यकारादेश होके—त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । युष्मद्+सु । अस्मद्+सु' यहां दकार को आकार[3] आदेश होके—युष्मासु । अस्मासु ।।

अब इन दो शब्दों में विशेष इतना है कि—

६१५—युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ।।२११।। अ० ८ । १ । २० ।।

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के साथ वर्त्तमान, पद से परे, [अपादादि में] जो युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके

---

१. द् को य्—(योऽचि ।। ७ । २ । ८९) नामिक—२०२ ।।

२. सुट्—(आमि सर्वनाम्नः सुट् ।। ७ । १ । ५२) नामिक—१६८ ।।

३. द् को आ—(युष्मदस्मदोरनादेशे ।। ७ । २ । ८६) नामिक—२०३ ।।

स्थान में क्रम से "वाम्" और "नौ" आदेश हों, और वे आगे कहे नियमानुसार अनुदात्त भी हो जावें।

यहां "वाम्" और "नौ" द्विवचन युष्मद् अस्मद् के स्थान में समझे जाते हैं। जैसे—षष्ठी द्विवचन—'युष्मद्+ओस्। अस्मद्+ओस्' = ग्रामो वां स्वम्, जनपदो नौ स्वम् यहां—युवयोः, आवयोः ऐसा प्राप्त था। चतुर्थीस्थ—ग्रामो वां दीयते, जनपदो नौ दीयते। यहां—युवाभ्याम्, आवाभ्याम् प्राप्त हैं। द्वितीयास्थ—माणवको वां पश्यति, माणवको नौ पश्यति। यहां—युवाम् आवाम् प्राप्त हैं।

इस सूत्र में 'स्थ' ग्रहण इसलिये है कि—दृष्टो मया युष्मत्पुत्रः यहां समास में षष्ठी का लुक् होने से आदेश और अनुदात्त भी हुआ॥

६१६–बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ २१२ ॥ अ० ८। १। २१॥

जो षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के साथ वर्त्तमान, पद से परे [अपादादि में] बहुवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से "वस्" और "नस्" [अनुदात्त] आदेश हों।

जैसे—षष्ठीस्थ—विद्या वो धनम्, राज्यं नो धनम्। यहां—युष्माकम्, अस्माकम् ऐसा प्राप्त था। चतुर्थीस्थ—नमो वः पितरः, शन्नो भवन्तु। यहां—युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम् पाता है। द्वितीयास्थ—बालो वः पश्यति, मा नो वधीः। यहां—युष्मान्, अस्मान् प्राप्त था॥

६१७–तेमयावेकवचनस्य ॥ २१३ ॥ अ० ८। १। २२॥

जो षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति के साथ वर्त्तमान, पद से परे अपादादि में एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से ते, मे [अनुदात्त] आदेश हों।

जैसे—[षष्ठीस्थ—विद्या ते धनम्, राज्यं मे धनम्। यहां तव और मम पाता है। चतुर्थीस्थ—] नि मे धेहि, नि ते दधे। यहां तुभ्यम्, मह्यम् ऐसा प्राप्त है, इत्यादि॥

६१८—त्वामौ द्वितीयायाः॥ २१४॥ अ० ८। १। २३॥

जो पद से परे द्वितीया-एकवचन [सहित] युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से "त्वा" "मा" ये अनुदात्त आदेश हों।

जैसे—कस्त्वा युनक्ति। पुनन्तु देवजनाः, इत्यादि। यहां त्वाम्, माम् प्राप्त है।

६१९—न चवाहाहैवयुक्ते॥ २१५॥ अ० ८। १। २४॥

जो युष्मद् अस्मद् को च, वा, ह, अह, एव इनका योग हो, तो उनके स्थान में वाम्, नौ आदि आदेश न हों।

जैसे—ग्रामो युवयोश्च स्वम्। ग्राम आवयोश्च स्वम् इत्यादि॥

६२०—पश्यार्थैश्चानालोचने॥ २१६॥ अ० ८। १। २५॥

जो पश्यार्थ धातुओं के अनालोचन अर्थ में वर्त्तमान युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वां नौ आदि आदेश न हों।

जैसे—ग्रामस्त्वां संप्रेक्ष्य संदृश्य समीक्ष्य [वा] गतः। ग्रामस्तव संप्रेक्ष्य गतः। ग्रामो मम संप्रेक्ष्य गतः, इत्यादि।

६२१-सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ।। २१७ ।।

अ० ८ । १ । २६ ।।

[जिसके पूर्व में अन्य कोई पद विद्यमान हो, ऐसे प्रथमान्त पद से परे जो] युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वां नौ आदि आदेश विकल्प करके हों ।

जैसे—अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम् । अथो ग्रामे कम्बलो मम स्वम् । अथो जनपदे कम्बलस्ते स्वम् । अथो जनपदे कम्बलस्तव स्वम्, इत्यादि ।।

६२२-वा०-युष्मदस्मदोरन्यतरस्यामनन्वादेशे ।। २१८ ।।

अ० ८ । १ । २६ ।।

जहां अनन्वादेश अर्थात् किसी वाक्य के पीछे उसी का निर्देश करना न हो, ऐसे अर्थ में वर्त्तमान जो युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वाम्, नौ आदेश विकल्प करके हों ।

जैसे—ग्रामे कम्बलो वां स्वम् । ग्रामे कम्बलो युवयोः स्वम् । ग्रामे कम्बलो नौ स्वम् । ग्रामे कम्बल आवयोः स्वम् ।।

६२३-वा०-अपर आह सर्व एव वान्नावादयोऽनन्वादेशे विभाषा वक्तव्याः ।। २१९ ।। अ० ८ । १ । २६ ।।

इस विषय में किन्हीं लोगों का ऐसा मत है कि अनन्वादेश में सब वां नौ आदि आदेश विकल्प करके हों ।

जैसे—कम्बलस्ते स्वम् । कम्बलस्तव स्वम् । कम्बलो मे स्वम् । कम्बलो मम स्वम् ।।

भवत् शब्द सर्वादिगण में पढ़ा है, इसकी सर्वनाम सञ्ज्ञा

होने का प्रयोजन यह है कि —**अकच्छेषात्त्वानि**। अकच् —भवकान्। शेष —स च भवांश्च भवन्तौ। आत्व —भवादृशः ।।

पुँल्लिङ्ग भवत् शब्द—

'भवत्+सु' यहां सर्वनामस्थानसञ्ज्ञा होने से नुम्[1], सु परे रहते पर दीर्घ[2], हल् से परे सकार का लोप[3] और संयोगान्तलोप[4] होकर —भवान्। भवन्तौ। भवन्तः। भवन्तम्। भवन्तौ। भवतः। भवता। भवद्भ्याम्। भवद्भिः। भवते। भवद्भ्याम्। भवद्भ्यः। भवतः। भवद्भ्याम्। भवद्भ्यः। भवतः। भवतोः। भवताम्। भवति। भवतोः। भवत्सु। इसके सब कार्य्य नकारान्त 'पठत्' शब्द के समान और **नपुंसकलिङ्ग** में 'उदश्वित्' शब्द के समान समझो ।।

स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त होके —भवती। भवत्यौ। भवत्यः, इत्यादि स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त 'कुमारी' शब्द के समान जानो ।।

सर्वनाम पुँल्लिङ्ग किम् शब्द—

'किम+सु'

१. नुम्—(उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥ ७। १। ७०) नामिक—११३।

२. सु परे रहने पर दीर्घ—(अत्वसन्तस्यचाधातोः ॥ ६। ४। १४) नामिक—१२२ ॥

३. हल् से परे सलोप—(हल्ङ्या० । ६। १। ६८) नामिक-५० ॥

४. संयोगान्तलोप—(संयोगान्तस्य लोपः ॥ ८। २। २३) नामिक—११४ ॥

६२४–किमः कः ।। २२० ।। अ० ७ । २ । १०३ ।।

सब विभक्तियों में किम् शब्द को क आदेश हो ।

अन्य कार्य 'सर्व' शब्द के समान—कः । कौ । के । कम् । कौ । कान् । केन । काभ्याम् । कैः । कस्मै । काभ्याम् । केभ्यः । कस्मात् । काभ्याम् । केभ्यः । कस्य । कयोः । केषाम् । कस्मिन् । कयोः । केषु ।।

नपुंसकलिङ्ग में—किम् । के । कानि । फिर भी—किम् । के । कानि । आगे पुँल्लिङ्ग के समान ।।

स्त्रीलिङ्ग में—का । के । काः । काम् । के । काः । कया । काभ्याम् । काभिः । कस्यै । काभ्याम् । काभ्यः । कस्याः । काभ्याम् । काभ्यः । कस्याः । कयोः । कासाम् । कस्याम् । कयोः । कासु ।।

शब्दों का रूपविषय पूरा हुआ ।।

अब वे नियम लिखते हैं कि जो वेदों में पुरुष आदि सब शब्दमात्र में घटेंगे—

६२५–सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः ।। २२१ ।। अ० ७ । १ । ३९ ।।

६२६–सुपां च सुपो भवन्तीति वक्तव्यम् ।। २२२ ।। अ० ७ । १ । ३९ ।।

सूत्र और वार्तिक का अर्थ इकट्ठा ही किया जाता है । वैदिक प्रयोग विषय में सुप् अर्थात् सु आदि इक्कीस प्रत्यय कि जिनको सात विभक्ति कहते हैं, इनके स्थान में सुप् अर्थात् किसी

के स्थान में कोई प्रत्यय का आदेश, लुक्, पूर्वसवर्ण, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, आल; ये आदेश हो जाते हैं।

सुप्—'ऋजवः सुपन्थाः' यहाँ बहुवचन जस् के स्थान में एकवचन सु आदेश हुआ है। पन्थानः, ऐसा प्राप्त था। 'युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणायाः' यहां सप्तमी एकवचन के स्थान में षष्ठी का एकवचन हो जाना है। 'दक्षिणायाम्' ऐसा पाता था।

लुक्—'परमे व्योमन्' यहाँ सप्तमी के एकवचन का लुक् हो गया है। 'व्योम्नि' ऐसा प्राप्त है। 'सोमो गौरी अधि श्रितः' 'मामकी इति, तनू इति' यहां सप्तमी के एकवचन का लुक् हुआ है। सोमो गौर्याम्; मामक्याम्, तन्वाम्, ऐसा प्राप्त था।

पूर्वसवर्ण—'धीती' 'मती,' यहां तृतीया के एकवचन को पूर्वसवर्ण आदेश हुआ है। 'धीत्या' 'मत्या' ऐसा प्राप्त था।

आत्—'उभा यन्तारा' यहां प्रथमा वा द्वितीया के द्विवचन के स्थान में [आत् हो गया है]। 'उभौ यन्तारा,' ऐसा पाता था।

शे—'युष्मे वाजबन्धवः' यहां बहुवचन जस् के स्थान में [शे हो गया है]। यूयं वाजबन्धवः, ऐसा प्राप्त था।

या—'उरुया' यहाँ तृतीया के एकवचन टा के स्थान में [या हो गया है]। 'उरुणा' ऐसा प्राप्त था।

डा—'नाभा पृथिव्याम्' यहाँ सप्तमी के एकवचन के स्थान में डा हो गया है। 'नाभौ पृथिव्याम्' ऐसा प्राप्त था।

ड्या—'अनुष्टुया,' यहाँ तृतीया के एकवचन के स्थान में ड्या हो गया है। 'अनुष्टुभा,' ऐसा पाता था।

याच्—'साधुया' यहाँ प्रथमा के एकवचन को याच् हुआ है। 'साधु' ऐसा होना था।

आल्—'वसन्ता यजेत्,' यहाँ सप्तमी के एकवचन को आल् आदेश हो गया है। 'वसन्ते' ऐसा होना था।

६२७–वा०–इयाडियाजीकाराणामुपसङ्ख्यानम् ॥ २२३ ॥
अ० ७ । १ । ३९ ॥

सुपों के स्थान में इया, डियाच्, ईकार ये तीन आदेश हों।

इया—'दार्विया परिज्मम्' यहाँ तृतीया के एकवचन को इया हो गया है। 'दारुणा' ऐसा पाता था।

डियाच्—'सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु' 'सुक्षेत्रिया' 'सुगात्रिया'। यहाँ भी सुमित्राः, और सुक्षेत्रिणा, सुगात्रिणा, ऐसा प्राप्त था।

ईकार—'दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्' यहाँ सप्तमी के एकवचन को ईकार हो गया है। 'सरसि शयानम्' ऐसा होना था॥

६२८–वा०–आङ्याजयारां चोपसङ्ख्यानम् ॥ २२४ ॥
अ० ७ । १ । ३९ ॥

आङ् अयाच् अयार् ये भी तीन, सुपों के स्थान में आदेश हों।

आङ्—'प्र बाहवा' यहाँ तृतीया के एकवचन को आङ् आदेश हुआ है। 'प्र बाहुना' ऐसा प्राप्त था।

अयाच्—'स्वप्नया वाव सेचनम्' यहाँ भी तृतीया के स्थान में अयाच् हुआ है। 'स्वप्नेन' ऐसा प्राप्त था।

अयार्—'स नः सिन्धुमिव नावया' यहां भी तृतीया के एकवचन को अयार् हुआ है । नावा, ऐसा प्राप्त है ।।

अब लिङ्गानुशासनविषयक प्रत्ययों का सङ्केत करते हैं—

अष्टाध्यायी और उणादिस्थ प्रत्ययों का परिगणन कि जिनके **तीनों लिङ्गों** में प्रयोग होते हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, ण्यत्, ण्वुल्, तृच्, ल्यु, णिनि, क, श, क, ष्वुन्, थकन्, ण्युट्, वुन्, अण्, क, टक्, अच् ट, इन्, खश्, खच्, अण्, ड, णिनि, टक्, ख्युन्, खिष्णुच्, खुकञ्, क्विन्, कञ्, क्विप्, ण्वि, ञ्युट्, विट्, कप्, ण्विन्, विच्, मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, क्विप्, णिनि, क्विप्, इनि, क्वनिप्; ड, ङ्वनिप्, अतृन्, निष्ठा, कानच्, क्वसु, शतृ, शानच्, शानन्, चानश्, शतृ, तृन्, इष्णुच्, क्स्नु, क्नु, विनुण्, वुञ्, युच्, उकञ्, षाकन्, इनि, आलुच्, रु, क्मरच्, घुरच्, कुरच्, क्वरप्, ऊक, र, उ, कि, किन्, नजिङ्, आरु, क्रु, क्लुकन्, क्रुकन् वरच्, क्विप्, ष्ट्रन्, इत्र, क्त, ण्वुल्, अण्, खल्, युच्, इतने कृत्प्रत्ययान्त शब्द और तद्धित [प्रत्ययान्त] सब शब्द **तीनों लिङ्गों** में आते हैं ।।

नियत पुँल्लिङ्ग प्रत्यय—घञ्, अप्, घ, अच्, [अच् प्रत्ययान्तों में भयादि शब्दों को छोड़कर] अथुच्, नङ्, नन्, कि, ड, डर्, इक्, इकवक्, घञादि प्रत्ययान्त शब्द कर्त्तृभिन्न सब कारक और भाव में नियत पुँल्लिङ्ग ही आते हैं, परन्तु नङ्प्रत्ययान्तों में याञ्चा शब्द को छोड़ के, क्योंकि यह केवल स्त्रीलिङ्ग में ही आता है ।।

नियत नपुंसकलिङ्ग प्रत्यय—क्त, ल्युट्, प्रत्यय कर्त्ताभिन्न कारक और भाव में ये सब नपुंसकलिङ्ग में ही आते हैं ।।

नियत स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय—क्तिन्, क्यप्, श, अ, अ, अङ्, युच्, इञ्, ण्वुच्, अनि, ये कर्त्ताभिन्न कारक और भाव में आते हैं। तथा टाप्, ङीप्, डाप्, ङीप्, ऊङ्, ङीन्, ति इतने प्रत्ययान्त शब्द नियत स्त्रीलिङ्ग में आते हैं ।।

अब आगे उणादिप्रत्ययान्त शब्द और लिङ्गानुशासन[1] तथा अर्द्धर्चादि की लिङ्गव्यवस्थादि लौकिक, वैदिक प्रयोगों की व्यवस्था से जान लेना ।।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृतव्याख्यासहितो
नामिकः समाप्तः ।।

वसुकालाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले ।
चतुर्दश्यां बुधे वारे नामिकः पूरितो मया ।। १ ।।

---

१. पाणिनिमुनिकृत—लिङ्गानुशासन—सूत्रपाठ सर्वान्त में देखिये । सं० ।

अथ नामिकान्तर्गतानां शब्दानां

सूचीपत्रम्

शब्द	पृष्ठ
अ	
अक्षि	३३
अग्नि	२६
अग्रणी	३७
अङ्गिरस्	९०
अजा	२६
अतिरि	३३
अथर्वन्	७२
अदस्	१२०
अधर	११०
अनडुह्	१०१
अनुष्टुभ्	८५
अनेहस्	९१
अन्तर	१११
अन्य	१०८
अन्यतर	१०८
अपर	११०
अप्	८३
अप्सरस्	९४
अम्भस्	९५
अरुस्	९६
अर्चिस्	९३
अर्थ	१९
अर्द्ध	११०
अर्यमन्	७३
अर्वाच्	६०
अल्प	११०
अल्पीयस्	९४
अवयाज्	
(अवयाः)	६६–६७
अवर	११०
अवी	४१
अश्मन्	७२
अश्रु	४५
अश्ववत्	
(अश्ववान्)	७०
अष्टन्	७९
असृज्	१०४
अस्थि	३३
अस्मद्	१२३
अहन्	७८
आ	
आज्यपा	२३
आत्मन्	७२
आपद्	७०
आयुस्	९६
आशिष्	९७
आसुरी	४०
आस्य	१०४
इ	
इतर	१०९
इदम्	११६
ई	
ईदृश	८९
उ	
उखास्रस्	९३
उत्तर	११०
उत्स्नुह्	१००

शब्द	पृष्ठ
उदक	१०८
उदच्	६२
उदश्वित्	१०५
उन्मुह्	१००
उपानह्	१००
उपेयिवस्	९४
उभ	१०८
उभय	१०८
उशनस्	९१
उशिज्	६५
उपस्	९४
उष्णभोजिन्	७९
उष्णिज्	६५
ऊ	
ऊषिवस्	९३
ऋ	
ऋत्विज्	६४
ऋभुक्षिन्	८१
ए	
एक	१२२
एकतर	१०९
एतद्	११५
एतादृश्	८९
एनस्	९५
क	
ककुभ्	८४
कतम	१०८
कतर	१०८
कतिपय	११०
कनीयस्	९४
कन्या	२३
कप्	८३
कमण्डलू	४९
कर्तृ	५३
कर्त्री	४०
कर्मन्	७७
कर्षू	४८
काम	९९
कारभू	४७
काष्ठभिद्	७०
किम्	१३३
किशोरी	४०
कीदृश्-कीदृङ्	८९
कीलालपा	२३
कुमारघातिन्	७९
कुमारी	३८
कुर्वत्	६९
कुहु	४६
कूपखा	२३
कृति	३६
कृष्ण	१८
क्रुञ्च्	६२
क्रोष्टु	४४
क्लेदन्	७२
क्षत्तृ	५६
ग	
गच्छत्	६९
गिर्	८५
गुग्गुलू	४९
गुडलिह्	९९
गुरु	४४
गृह	२१
गो	५७
गोजा	२३
गोदुह्	९८
गोमत्	
(गोमान्)	७०
गोषा	२३
ग्रन्थ	१८
ग्रामणी	३७
ग्लौ	५८

शब्द	पृष्ठ
घ	
घट	१८
घृतपावन्	७२
घृतस्निह्	१००
घृतस्पृश्	८९
च	
चतसृ	५५
चतुर्	८६
चन्द्रमस्	९०
चमू	४९
चरम	११०
चर्मन्	७७
चिरण्टी	४०
छ	
छदिस्	९७
छाया	२६
ज	
जतु	४५
जनिमन्	७२
जन्मन्	७७
जरा	२६
जल	२१
जातवेदस्	९०
जानु	४५
जामातृ	५२
जाया	२६
जूर्	८६
ज्यातिस्	९६
त	
तक्षन्	७२
तद्	११४
तनु	४६
तन्त्री	४१
तरी	४१
तस्थिवस्	९४
तादृश् (तादृङ्)	८९
तालु	४५
तिप्	८३
तिसृ	५५
तुर्	८६
तूर्	८६
तृपत्	६८
त्यद्	११२
त्यादृश्	८९
त्रपु	४५
त्रि	८७
त्रितय	११०
त्रिष्टुभ्	८५
त्व	१०९
त्वच्	६०
त्वष्टृ	५३
त्विष्	९७
द	
दक्षिण	११०
दण्डिन्	७९
दधि	३३
दधिक्रा	२३
दध्यच्	६०
दन्त	१०२
दद्रू	४९
दशन्	८१
दिव्	८८
दिश्	८९
दुहितृ	५५
दृन्भू	४७
दृश्	८९
दृषद्	७०
दोष्	१०४
द्रविणोदस्	९०
द्वि	१२३
द्वितय	११०

शब्द	पृष्ठ
ध	
धन	१९
धनवत् (धनवान्)	७०
धनिन्	७९
धनुस्	९६
धरिमन्	७२
धर्म	२१
धुर्	८६
धूलि	३६
धृति	३६
धेनु	४५
ध्वाङ्क्षराविन्	७९
न	
नखच्छिद्	७०
नदी	४०
ननान्दृ	५५
नप्तृ	५३
नवन्	८१
नामन्	७७
नासिका	१०३
निशा	१०४
नृ	५२
नृचक्षस्	९१
नेम	११०
नेष्टृ	५३
नोधस्	९०
नौ	५८
न्याय	१९
प	
पचत्	६९
पञ्चन्	८१
पट	१८
पठत्	६९
पण्डितमानिन्	७९
पति	२९
पथिन्	८१
पपिवस्	९४
पपी	४१
पापीयस्	९४
पयस्	९४
पर	११०
परमार्थ	१९
परमेश्वर	१८
परिज्मन्	७२
परिभू	४६
परिव्राज्	६५
परीणह्	१००
पर्णध्वस्	९३
पात्र	२१
पाथस्	९५
पाद	१०२
पामन्	७७
पितृ	४९
पुनर्भू	४७
पुरुदंशस्	९१
पुरुष	९
पुरोडाश् (पुरोडाः)	६६–६७
पुरोधस्	९०
पुर्	८६
पूर्व	११०
पूषन्	७३
पृषत्	६९
पोतृ	५३
प्रजा	२६
प्रतिदिवन्	८१
प्रतिपद्	७०
प्रत्यच्	६०
प्रथम	११०
प्रथमजा	२३
प्रथिमन्	७२

शब्द	पृष्ठ
प्रभु	४४
प्रशास्तृ	५३
प्राच्	६०
प्राछ्	६३
प्रावृष्	९७
प्रियचतुर्	८७
प्लीहन्	७२
ब	
बर्हिस्	९६
बल	२१
बहुपूषन् (बहुपूषाणि)	७३
बह्वर्यमन् (बह्वर्यमाणि)	७३
बुद्धि	३६
बृहत्	६९
ब्रह्मद्विष्	९७
ब्रह्मन्	७८
ब्रह्मबन्धू	४८
ब्रह्मवादिन्	७९
ब्राह्मणी	४०
भ	
भवत्	१३३
भसद्	७०
भस्मन्	७७
भानु	४४
भुरिज्	६५
भुर्	८६
भूमि	३६
भूयस्	९५
भूरिदावन्	७२
भ्रातृ	५२
भ्रूणहन्	७८
म	
मघवन्	७४
मज्जन्	७२
मथिन्	८१
मध्वच्	६०
मनस्	९५
मरुत्	६८
महत्	६९
महिमन्	७२
मातरिश्वन्	७२
मातृ	५५
माया	२६
मास	१०३
मित्रद्रुह्	१००
मिष्	८३
मूर्द्धन्	७२
मेधा	२६
मोक्ष	१९
म्रदिमन्	७२
य	
यकृत्	१०४
यजुस्	९६
यज्ञनी	३७
यज्वन्	७२
यद्	११४
ययी	४१
यवभृज्	६५
यवमत् (यवमान्)	७०
यवीयस्	९४
यातृ	५५
यादृश् (यादृङ्)	८९
युज्	६५
युवन्	७४
युष्मद्	१२३
यूष्	१०४
र	
रज्जु	४६
रवि	

शब्द	पृष्ठ
राजन्	७१
रुचि	३६
रुष्	९७
रेणु	४६
रै	५६
रोमन्	७७
रोहित्	६८
ल	
लक्ष्मी	४१
लघट्	६८
लिश्	८९
लोमन्	७७
व	
वचस्	९५
वणिज्	६५
वधू	४९
वधूटी	४०
वन	२१
वपुस्	९६
वयोधस्	९१
वर्षाभू	४७
वस्तु	४५
वस्त्र	२१
वह्नि	२९
वाच्	५९
वापि	३६
वामोरू	४९
वायु	४३
वारि	३१
विद्यावत्	
(विद्यावान्)	७०
विद्वस्	९२
विपद्	७०
विप्रुष्	९७
विभु	४४
विराज्	६५
विश्	८९
विश्व	१०८
विश्वप्सन्	७२
विश्वभोजस्	९०
विश्वभ्राज्	६५
विश्वयशस्	९०
विश्वराज्	६५
विश्ववेदस्	९०
वृक्ष	१८
वृत्रहन्	७७
वृषन्	७२
वेद	१९
वेदविद्	७०
वेदि	३५
वेधस्	९१
वेहत्	६८
व्यवहार	१९
व्योमन्	७७
श	
शकृत्	१०४
शक्मन्	७२
शत्रु	४८
शत्रुहन्	
(शत्रुहा)	७३
शप्	८३
शरद्	७०
शरिमन्	७२
शर्मन्	७७
शस्त्र	२१
शिव	१८
शीर्षघातिन्	७९
शुच्	६०
शुश्रुवस्	९४
शोचिस्	९६
श्मश्रु	४५
श्री	४१

शब्द	पृष्ठ
श्रुति	३६
श्रेयस्	९४
श्वन्	७४
श्वश्रू	४९
श्वेतवाह (श्वेतवाः)	६६-६७
ष	
षष्	९८
स	
सँश्चत्	६८
संहितोरू	४९
सक्थि	३३
सखि	३०
सदृश् (सदृङ्)	८९
सप्तन्	८१
सम	११०
सम्पद्	७०
सम्राज	६५
सरट्	६८
सरयु	४६

शब्द	पृष्ठ
सरस्वती	४०
सर्पिस्	९६
सर्व	१०६
सलिल	२१
साधुकारिन्	७९
सामन्	७६
सिम	११०
सीमन्	७७
सुत्रामन्	७२
सुदामन्	७२
सुधर्मन्	७२
सुधी	३७
सुधीवन्	७२
सुपर्वन्	७२
सुप्	८३
सुमनस्	९४
सुशर्मन्	७२
सेदिवस्	९४
सेनानी	३६
सोमपा	२१
सोमयाजिन्	७९

शब्द	पृष्ठ
स्तरी	४१
स्त्री	४०
स्थण्डिलशायिन्	७९
स्थामन्	७२
स्नेहन्	७२
स्मृति	३६
स्रुच्	६०
स्व	१११
स्वतवस्	५९
स्ववस	९५
स्वसृ	५६
स्वादु	४५
ह	
हरित्	६८
हर्तृ	५३
हविस्	९६
हानि	३६
हृदय	१०३
होतृ	५३
[शब्दसंख्या	४३५]

नामिके समुद्धृतानां सूत्रवार्तिकादीनां वर्णानुक्रमसूची

सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
अचः	६१
अचि र ऋतुः	५५
अचि श्नुधातुभ्रुवां०	४२
अचो ञ्णिति	३०
अच्च घेः	२८
अटकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि	१३
अतोऽम्	१९
अतो भिस ऐस्	१४
अत्वसन्तस्य चाधातोः	६६
अथ शब्दानुशासनम्	६
अदस औ सुलोपश्च	१२०
अदसोऽसेर्दादु दो मः	१२०
अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः	१०९
अनङ् सौ	३०
अनाप्यकः	११७
अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः	१११
अपो भिः	८४
अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृ०	५३
अमि पूर्वः	१२
अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः	४०

सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
अर्थवदधातुरप्रत्ययः०	७
अल्लोपोऽनः	३३
अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च	६७
अष्टन आ विभक्तौ	७९
अष्टाभ्य औश्	८०
अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णा०	३३
अहन्	७८
*आङ्याजयारां चोप०	१३६
आङि चापः	२४
आङो नास्त्रियाम्	२७
आण्नद्याः	३५
आतो धातोः	२२
आदेशप्रत्यययोः	१७
आमि सर्वनाम्नः सुट्	१०७
इकोऽचि विभक्तौ	३१
इतोऽसर्वनामस्थाने	८२
इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तः	११८
इदमो मः	११६
इदोऽय् पुंसि	११६
इन्हन्पूषार्यम्णां शौ	७३

* पुष्पाङ्कितानि वार्त्तिकापि ज्ञेयानि ।

सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
*इयाडियाजीकाराणामुप०	१३६
ई च द्विवचने	३४
उगिदचां सर्वनामस्थाने०	६०
उद ईत्	६२
उपदेशेऽजनुनासिक इत्	९
ऋत उत्	५१
ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः	५०
ऋदुशनस्पुरुदंसो०	५०
*एकतरात्सर्वत्र	१०९
एकवचनं सम्बुद्धिः	१८
एकवचनस्य च	१२७
एकाचो बशो भष् झष०	९९
एकाजुत्तरपदे णः	७७
एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः	१८
एत ईद्बहुवचने	१०१
एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य	३६
ओसि च	१६
औङ आपः	२४
औतोऽम्शसोः	५७
किमः कः	१३४
कृत्तद्धितसमासाश्च	८
क्विन्प्रत्ययस्य कुः	६०
खरवसानयोर्विसर्जनीयः	११
ख्यत्यात्परस्य	२९

सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
गोतो णित्	५७
घेर्ङिति	२७
ङसिङसोश्च	२८
ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ	१०६
ङिति ह्रस्वश्च	३५
ङे प्रथमयोरम्	१२४
ङे राम्नद्याम्नीभ्यः	२५
ङेर्यः	१५
ङ्याप्प्रातिपदिकात्	८
चतुरनडुहोरामुदात्तः	८६
चुटू	११
चौ	६१
छन्दस्यपि दृश्यते	३४
छन्दस्युभयथा	३८
छन्दस्युभयथा	५६
जराया जरसन्यतरस्याम्	२६
जश्शसोः शिः	१९
जसः शी	१०६
*जसादिषु च्छन्दसि०	२६
जसि च	२६
टाङसिङसामिनात्स्याः	१३
तदोः सः सावनन्त्ययोः	११२
तवममौ ङसि	१२८
तस्माच्छसो नः पुंसि	१३

सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
तस्य लोपः	१०	नपुंसकाच्च	१९
तुभ्यमह्यौ ङसि	१२७	न भूसुधियोः	३७
तृज्वत् क्रोष्टुः	२४	नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य	३०
तेमयावेकवचनस्य	१३०	न विभक्तौ तुस्माः	११
त्यदादीनामः	११२	न संयोगाद्वमन्तात्	७२
त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ	५५	नहो धः	१००
त्रेस्त्रयः	५८	नामि	१६
त्वमावेकवचनस्य	१२५	नृ च	५२
त्वामौ द्वितीयायाः	१३१	नेतराच्छन्दसि	१०९
त्वाहौ सौ	१२३	नेदमदसोरकोः	११८
थो न्थः	८२	नेयङुवङ्स्थानावस्त्री	४१
दश्च	११६	नोपधायाः	८०
दादेर्घातोर्घः	९८	पञ्चम्या अत्	१२८
दिव उत्	८८	पतिः समास एव	२९
दिव औत्	८८	पथिमथ्यृभुक्षामात्	८२
दीर्घाज्जसि च	३९	पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्०	१०२
दृक्स्ववस्स्वतवसां०	८९	पश्यार्थैश्चानालोचने	१३१
*दृन्कारपुनः पूर्वस्य०	४७	पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरा०	११०
द्वितीयाटौस्स्वेनः	११५	पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा	११२
द्वितीयायाञ्च	१२५	प्रथमचरमतयाल्पार्द्ध०	११०
द्व्यचेकयोर्द्विवचनैकवचने	९	प्रथमयोः पूर्वसवर्णः	१२
न चवाहाहैवयुक्ते	१३१	प्रथमायाश्च द्विवचने०	१२४
न तिसृचतसृ	५५	बहुलं छन्दसि	१४
नपुंसकस्य झलचः	२०	बहुवचनस्य वस्नसौ	१३०

सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
बहुवचने झल्येत्	१५	र्वोरुपधाया दीर्घ इकः	८५
बहुषु बहुवचनम्	९	लशक्वतद्धिते	१२
भ्यसोऽभ्यम्	१२७	वर्षाभ्वश्च	४७
भस्य टेर्लोपः	८२	वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः	९२
मघवा बहुलम्	७५	वसोः सम्प्रसारणम्	९२
मपर्यन्तस्य	१२३	वा छन्दसि	३९
यचि भम्	२२	वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्	१००
यस्मात्प्रत्ययविधिस्त०	१३	*वा नपुंसकानाम्	७६
यः सौ	११९	वाऽमि	४२
याडापः	२५	वाऽम्शसोः	४१
युजेरसमासे	६६	वावसाने	५९
युवावौ द्विवचने	१२४	वा षपूर्वस्य निगमे	७३
युष्मदस्मदोरनादेशे	१२६	विभक्तिश्च	८
*युष्मदस्मदोरन्यतर०	१३२	विभाषा ङिश्योः	३४
युष्मदस्मदोः षष्ठीचतु०	१२९	विभाषा तृतीयादिष्वचि	४४
युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्	१२८	विरामोऽवसानम्	१०
यूयवयौ जसि	१.५	व्रश्चभ्रस्जसृजमृज०	६३
यूस्त्र्याख्यौ नदी	३९	शसो न	१२६
योऽचि	१२६	शि सर्वनामस्थानम्	२०
*रषाभ्याँ णत्व ऋकार०	५१	शेषो घ्यसखि	२७
रषाभ्याँ नो णः समानपदे	८७	शेषे लोपः	१२४
रात्सस्य	५१	श्री ग्रामण्योश्छन्दसि	३७
रायो हलि	५६	*श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धि०	६
रोः सुपि	८५	श्वयुवमघोनामतद्धिते	७४

सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
*श्वेतवाहादीनां डस्	६६
षट्चतुर्भ्यश्च	८०
षड्भ्यो लुक्	८०
षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा	३१
ष्णान्ता षट्	८०
संगयोन्तस्य लोप:	६०
सख्युरसम्बुद्धौ	३०
*सत्त्वप्रधानानि नामानि	६
सपूर्वायाः प्रथमाया०	१३२
समर्थः पदविधिः	७
सम्प्रसारणाच्च	७४
सम्बुद्धौ च	२५
सम्बोधने च	१७
*सर्व एव वान्नावादयो०	१३२
सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ	२०
सर्वनाम्नः स्मै	१०६
सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च	१०८
ससजुषो रुः	१०
सान्तमहतः संयोगस्य	६९
साम आकम्	१२९

सूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
सामन्त्रितम्	१८
सावनडुहः	१०१
सुपः	८
*सुपां च सुपो भवन्तीति०	१३४
सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णा०	१३४
सुपि च	१४
सुप्तिङन्तं पदम्	१०
सौ च	७३
स्त्रियाः	४०
स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्	१११
स्वमोर्नपुंसकात्	३१
*स्ववस्स्वतवसोर्मास०	९५
स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्०	८
हलि च	८१
हलि लोपः	११७
हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०	२३
हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु	७७
ह्रस्वनद्यापो नुट्	१६
ह्रस्वस्य गुणः	२९
ह्रस्वो नपुंसके प्राति०	२३

※ ओ३म् ※

पाणिनिमुनिप्रणीतं लिङ्गानुशासनम्

---

१ लिङ्गम्

२ स्त्री

३ ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृ-
पोतृननान्दरः।

४ अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः ।

५ अशनिभरण्यरणयः पुंसि च ।

६ मिन्यन्तः ।

७ विह्नवृष्ण्यग्नयः पुंसि ।

८ श्रोणियोन्यूर्मयः पुंसि च ।

९ क्तिन्नन्तः ।

१० ईकारान्तश्च ।

११ ऊङाबन्तश्च ।

१२ य्वन्तमेकाक्षरम् ।

१३ विंशत्यादिरानवतेः ।

१४ दुन्दुभिरक्षेषु ।

१५ नाभिरक्षत्रिये ।

१६ उभावप्यन्यत्र पुंसि ।

१७ तलन्तः ।

१८ भूमिविद्युत्सरिल्लता-
वनिताभिधानानि ।

१९ यादो नपुंसकम् ।

२० भाःस्रुक्स्रग्दिग्गुष्णिगुपानहः।

२१ स्थूणोर्णे नपुंसके च ।

२२ गृहशशाभ्यां क्लीबे ।

२३ प्रावृड्विप्रुड्रुट्तृट्विट्त्विषः ।

२४ दर्विविदिवेदिखनिशान्त्यश्रि-
वेशिकृष्योषधिकटघङ्गुलयः

२५ तिथिनाडिरुचिवीचिनालि-
धूलिकेकिकेलिच्छविनीवि-
रात्र्यादयः ।

२६ शष्कुलिराजिकुटचशनिवर्त्ति-
भ्रुकुटित्रुटिवलिपङ्क्तयः ।

२७ प्रतिपदापद्विपत्सम्पच्छरत्सं-
सत्परिषदुषः संविरक्षुत्पुन्मुत्-
समिधः ।

२८ आशीर्धूः पूर्गीर्द्वारः ।

२९ अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां-
बहुत्वञ्च ।

३० स्रक्त्वग्ज्योग्वाग्यवागू-
नौस्फिचः ।

३१ तृटिसीमासम्बध्याः ।

३२ चुल्लिवेणिखार्यश्च ।

३३ ताराधाराज्योत्स्नादयश्च ।

३४ शलाका स्त्रियां नित्यम् ।

१ **पुमान्** ।
२ घञबन्तः ।
३ घाजन्तश्च ।
४ भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके ।
५ नङन्तः ।
६ याच्ञा स्त्रियाम् ।
७ क्यन्तो घुः ।
८ इषुधिः स्त्री च ।
९ देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्र-
नखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठ-
खड्गशरपङ्काभिधानानि ।
१० त्रिविष्टपत्रिभुवने नपुंसके ।
११ द्यौ स्त्रियां च ।
१२ इषुबाहू स्त्रियां च ।
१३ बाणकाण्डौ नपुंसके च ।
१४ नन्तः ।
१५ क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभि-
धानानि ।
१६ अभ्रं नपुंसकम् ।
१७ उकारान्तः ।
१८ धेनरज्जुकुहुसरयुतनुरेणु-
प्रियङ्गवः स्त्रियाम् ।
१९ समासे रज्जुः पुंसि च ।
२० श्मश्रुजानवसुस्वाद्वश्रुजतु-
त्रपुतालूनि नपुंसके ।
२१ वसु चार्थवाचि ।
२२ मद्गुमधुसीधुशीधुसानुकम-
ण्डलूनि नपुंसके च ।
२३ रुत्वन्तः ।
२४ दारुकसेरुजतुवस्तुमस्तूनि
नपुंसके ।
२५ सक्तुर्नपुंसके च ।
२६ प्राग्रश्मेरकारान्तः ।
२७ कोपधः ।
२८ चिबुकशालूकप्रातिपदिकांशु-
कोल्मुकानि नपुंसके ।
२९ कण्टकानीकसरकमोदकचष-
कमस्तकपुस्तकतडाकनिष्क-
शुष्यवर्चस्कपिनाकभाण्डक-
पिण्डककटकशण्डकपिटकता-
लकफलककल्कपुलाकानि
नपुंसके च ।
३० टोपधः ।
३१ किरीटमुकुटललाटवटविट-
शृङ्गाटकण्टलोष्टानि
नपुंसके ।
३२ कुटकूटकपटकवाटकर्पटनट-
निकटकीटकटानि नपुंसके च ।
३३ णोपधः ।
३४ ऋणलवणपर्णतोरण-
रणोष्णानि नपुंसके ।

३५ कार्षापणस्वर्णसुवर्णव्रण-
चरणवृषणविषाणचूर्ण-
तृणानि नपुंसके च।

३६ थोपधः।

३७ काष्ठपृष्ठसिक्थोक्थानि
नपुंसके।

३८ काष्ठा दिगर्था स्त्रियाम्।

३९ तीर्थप्रोथयूथगाथानि नपुंसके
च।

४० नोपधः।

४१ जघनाजिनतुहिनकाननवनवृ-
जिनविपिनवेतनशासनसोपान-
मिथुनश्मशानरत्ननिम्नचिह्ना-
नि नपुंसके।

४२ मानयानाभिधाननलिन-
पुलिनोद्यानशयनासनस्थान-
चन्दनालानसम्मानभवन-
वसनसम्भावनविभावन-
विमानानि नपुंसके च।

४३ पोपधः।

४४ पापरूपोडुपतल्पशल्पपुष्प-
शष्पसमीपान्तरीपाण
नपुंसके।

४५ शूर्पकुतपकुणपद्वीपवटपान
नपुंसके च।

४६ भोपधः।

४७ तलभं नपुंसकम्।

४८ जृम्भं नपुंसके च।

४९ मोपधः।

५० रुक्मसिध्मयुग्मेध्मगुल्माध्या-
त्मकुङ्कुमानि नपुंसके च।

५१ सङ्ग्रामदाडिमकुसुमाश्रमक्षेम-
क्षौमहोमोद्दामानि नपुंसके च।

५२ योपधः।

५३ किसलयहृदयेन्द्रियोत्तरीयाणि
नपुंसके।

५४ भीमयकषायमलयान्वयाव्यया-
नि नपुंसके च।

५५ रोपधः।

५६ द्वाराग्रस्फारतक्रवक्रवप्रक्षिप्र-
क्षुद्रनारतीरदूरकृच्छ्रन्ध्राश्र-
श्वभ्रभीरगभीरक्रूरविचित्रके-
यूरकेदारोदराजस्रशरीरकन्द-
रमन्दारपञ्जरजठराजिरवैर-
चामरपुष्करगह्वरकुहरकुटीर-
कुलीरचत्वरकाश्मीरनीराम्बर-
शिशिरतन्त्रयन्त्रनक्षत्रक्षेत्रमित्र-
कलत्रचित्रमूत्रसूत्रवक्त्रनेत्र-
गोत्राङ्गुलित्रभलत्रशस्त्रशास्त्र
वस्त्रपत्रपात्रक्षत्राणि नपुंसके।

५७ शुक्रमदेवतायाम्।

५८ चक्रवज्रान्धकारसारावारपार-
क्षीरतोमरशृङ्गारभृङ्गार-
मन्दारोशीरतिमिरशिशिराणि
नपुंसके च ।
५९ षोपधः ।
६० शिरीषशीर्षाम्बरीषपीयूषपु-
रीषकिल्विषकल्माषाणि
नपुंसके ।
६१ यूषकरीषामिषविषवर्षाणि
नपुंसके च ।
६२ सोपधः ।
६३ पनसबिसबुससाहसानि
नपुंसके ।
६४ चमसांसरसनिर्यासोपवास
कार्पासवासभासकासकांस-
मांसानि नपुंसके च ।
६५ कंसं चाप्राणिनि ।
६६ रश्मिदिवसाभिधानानि ।
६७ दीधितिः स्त्रियाम् ।
६८ दिनाहनी नपुंसके ।
६९ मानाभिधानानि ।
७० द्रोणाढकौ नपुंसके च ।
७१ खारीमानिके स्त्रियाम् ।
७२ दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वं च ।
७३ नाड्यपजनोपपदानि व्रणाङ्ग-
पदानि ।
७४ मरुद्गरुत्तरद्ऋत्विजः ।
७५ ऋषिराशिदृतिग्रन्थिक्रिमि
ध्वनिबलिकौलिमौलिरवि-
कविकपिमुनयः ।
७६ ध्वजगजमुञ्जपुञ्जाः ।
७७ हस्तकुन्तान्तव्रातवातदूतधूर्त-
सूतचूतमुहूर्त्ताः ।
७८ षण्डमण्डकरण्डभरण्डवरण्ड-
तुण्डगण्डमुण्डपाषण्ड
शिखण्डाः ।
७९ वंशांशपुरोडाशाः ।
८० ह्रदकन्दकुन्दबुद्बुदशब्दाः ।
८१ अर्घपथिमथ्यृभुक्षिस्तम्ब-
नितम्बपूगाः ।
८२ पल्लवपल्वलकफरेफकटाह-
निर्व्यूहमठमणितरङ्गतुरङ्ग-
गन्धस्कन्धमृदङ्गसङ्गसमुद्र-
पुङ्खाः ।
८३ सारथ्यतिथिकुक्षिवस्तिपाण्य-
ञ्जलयः ।

---

१ नपुंसकम्
२ भावे ल्युडन्तः ।
३ निष्ठा च ।
४ त्वष्यञौ तद्धितौ ।

५ कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्यः ।

६ यद्यढग्यगञण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि ।

७ अव्ययीभावः ।

८ द्वन्द्वैकत्वम् ।

९ अभाषायां हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च ।

१० अनञ्कर्मधारयस्तत्पुरुषः ।

११ अनल्पे छाया ।

१२ राजामनुष्यपूर्वा सभा ।

१३ सुरासेनाच्छायाशालानिशाः स्त्रियां च ।

१४ परवत् ।

१५ रात्राह्नाहाः पुंसि ।

१६ अपथपुण्याहे नपुंसके ।

१७ सङ्ख्यापूर्वा रात्रिः ।

१८ द्विगुः स्त्रियां च ।

१९ इसुसन्तः ।

२० अर्चिः स्त्रियां च ।

२१ छदिः स्त्रियामेव ।

२२ मुखनयनलोहवनमांसरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि ।

२३ सीरार्थौदनाः पुंसि ।

२४ वक्त्रनेत्रारण्यगाण्डीवानि पुंसि च ।

२५ अटवी स्त्रियाम् ।

२६ लोपधः ।

२७ तूलोपलतालकुसूलतरलकम्बलदेवलवृषलाःपुंसि ।

२८ शीलमूलमङ्गलसालकमलतलमुसलकुण्डलपललमृणालवालबालनिगलपलालविडालखिलशूलाः पुंसि च ।

२९ शतादिः सङ्ख्या ।

३० शतायुतप्रयुताः पुंसि च ।

३१ लक्षाकोटी स्त्रियाम् ।

३२ शङ्कुः पुंसि । सहस्रः पुंसि च ।

३३ मन्द्व्यच्कोऽकर्त्तरि ।

३४ ब्रह्मन्पुंसि च ।

३५ नामरोमणी नपुंसके ।

३६ असन्तो द्व्यच्कः ।

३७ अप्सराः स्त्रियाम् ।

३८ त्रान्तः ।

३९ यात्रामात्राभस्त्रादंष्ट्रावरत्राः स्त्रियामेव ।

४० भृत्रामित्रछात्रपुत्रमन्त्रवृत्रमेढ्रोष्ट्राः पुंसि ।

४१ पत्रपात्रपवित्रसूत्रच्छत्राः पुंसि च ।

४२ बलकुसुमशुल्बयुद्धपत्तनरणाभिधानानि ।

४३ पद्मकमलोत्पलानि पुंसि च ।
४४ आहवसङ्ग्रामौ पुंसि ।
४५ आजिः स्त्रियामेव ।
४६ फलजातिः ।
४७ वृक्षजातिः ।
४८ वियज्जगत्सकृत्शकन्पृषच्छकृद्यकृदुदश्वितः ।
४९ नवनीतावतानृतामृतनिमित्तवित्तचित्तपित्तव्रतरजतवृत्तपलितानि ।
५० श्राद्धकुलिशदैवपीठकुण्डाङ्गदधि सक्थ्यक्ष्यस्थ्यास्पदाकाशकण्वबीजानि ।
५१ दैवं पुंसि च ।
५२ धान्याज्यसस्यरूप्यपण्यवर्ण्यधृष्यहव्यकव्यकाव्यसत्यापत्यमूल्यशिक्यकुड्यमद्यहर्म्यतूर्यसैन्यानि ।
५३ द्वन्द्वबर्हदुःखबडिशपिच्छबिम्बकुटुम्बकवचवरशरवृन्दारकाणि ।
५४ अक्षमिन्द्रिये ।

---

१ स्त्रीपुंसयोः ।
२ गोमणियष्टिमुष्टिपाटलिवस्तिशाल्मलित्रुटिमसिमरीचयः ।
३ मृत्युसीधुकर्कन्धुकिष्कुकण्डुरेणवः ।
४ गुणवचनमुकारान्तं नपुंसकं च ।
५ अपत्यार्थतद्धिते ।

---

१ पुंनपुंसकयोः ।
२ घृतभूतमुस्तक्ष्वेलितैरावतपुस्तक बुस्तलोहिताः ।
३ शृङ्गार्घनिदाघोद्यमशल्यदृढाः ।
४ व्रजकुञ्जकुथकूर्चप्रस्थदर्पार्धर्चदर्भपुच्छाः ।
५ कबन्धौषधायुधान्ताः ।
६ दण्डमण्डखण्डशवसैन्धवपार्श्वाकाशकुशकाशाङ्कुशकुलिशाः ।
७ गृहमेहदेहपट्टपटहाष्टापदाम्बुदककुदाश्च ।

---

१ अविशिष्टलिङ्गम् ।
२ अव्ययं कतियुष्मदस्मदः ।
३ ष्णान्ता सङ्ख्या ।
४ गुणवचनं च ।
५ कृत्याश्च ।
६ करणाधिकरणयोर्ल्युट् ।
७ सर्वादीनि सर्वनामानि ।

इति पाणिनीयं लिङ्गानुशासनम्

प्रकाशक
वैदिक पुस्तकालय
दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी; ०११-[illegible]५११, ९३१३७८४२७२